• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

# श्रीमद्भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

१५ | गौराब्द ४८३, मास—पद्मनाभ-२२, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०२६, १७ अक्टूबर १९६९ | संख्या ४-५

# श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

## श्रीभीष्मदेव कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

( श्रीमद्भागवत १।९।३२-४२ )

श्रीभीष्म उवाच—

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

निर्याण-समयमें शर-शय्यापर लेटे हुए श्रीभीष्मजीने भगवान् श्रीकृष्णको अपने सम्मुख लेकर इस प्रकार स्तव करना आरम्भ किया—

मेरी मन-बुद्धि तथा इन्द्रियाँ नाना प्रकारके धर्मादि अनुष्ठानों द्वारा परात्पर-तत्त्व, स्व-स्वरूपभूत परमानन्दमय-मूर्ति, यादवकुल शिरोमणि भगवान श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित हैं, जो कभी-कभी लीला करनेके लिए उस प्रकृतिके प्रति दृष्टिपात करते हैं, जिसके द्वारा इस संसारमें सृष्टि आदि कार्य सुचारु रूपसे चलते हैं । तथापि ये जीवकी तरह आवृतस्वरूप या परतन्त्र नहीं होते; ये सर्वदा ही स्वतन्त्र हैं और इनकी अपेक्षा और कोई भी विराट् वस्तु या तत्त्व नहीं है ।।३२।।

**त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं**
**रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।**
**वपुरलककुलावृतननाब्जं**
**विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ।।३३।।**

इस त्रिलोकमें एकमात्र सुन्दर और तमालकी तरह साँवला जिनका श्रीविग्रह है, प्रातः-कालीन सूर्यकी किरणोंकी-सी आभाद्वारा जिनका निर्मल एवं उज्ज्वल पीताम्बर शोभाय-मान हो रहा है, सुन्दर लटकते हुए घुंघराले केशोंद्वारा जिनका श्रीमुखकमल अत्यन्त सुशोभित है, ऐसे अर्जुनसखा श्रीकृष्णके प्रति मेरी अहेतुकी, फलाभिसन्धिरहिता निष्कपट प्रीति हो ।।३३।।

**युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-**
**कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ।**
**मम निशितशरैर्विभिद्यमान-**
**त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ।।३४।।**

युद्धमें घोड़ोंके खुरोंसे उड़ते हुए धूलि-कणों द्वारा धूसरित इधर-उधर उड़ते हुए घुँघराले केशोंद्वारा और पसीनेके बिन्दुओं द्वारा जिनका श्रीमुख अत्यन्त शोभायमान हो रहा है तथा मेरे तीखे बाणोंद्वारा जिनके शरीरकी त्वचा क्षतविक्षत हो गयी है, ऐसे सुन्दर कवचद्वारा सुशोभित उन भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा मन रमण करे ।।३४।।

**सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये**
**निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।**
**स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा**
**हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ।।३५।।**

"हे अच्युत, दोनों पक्षोंकी सेनाओंके बीच मेरे रथको स्थापन कीजिए, जिससे मैं युद्ध-स्थलमें अवस्थित योद्धाओंका निरीक्षण कर सकूँ"—सखा अर्जुनके इस बचनको सुनकर जिन्होंने तुरन्त अपने और शत्रुपक्षकी सेनाओं के बीच रथ स्थापन कर वहाँ अवस्थान करते हुए अपने दृष्टिपातके प्रभावद्वारा ही शत्रु दुर्योधनके पक्षके योद्धाओंको "ये भीष्म हैं, ये द्रोण हैं, ये कर्ण है' इत्यादि कहते हुए परिचय प्रदान करनेकी छलनासे साथ-साथ ही उन लोगोंका आयु अपहरण कर अर्जुनको जय प्राप्त कराया था, उन अर्जुनसखा श्रीकृष्णके प्रति मेरी परम प्रीति उदित हो ॥३५॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

दूरमें अवस्थित बृहत सेनाके मुखस्वरूप उस सेनाके अग्रभागमें स्थित भीष्मादि वीरोंका दर्शन कर उनके बधसे पापकी आशंका कर अपने ज्ञातिवर्गके विनाशसे निवृत्त अर्जुनका तात्कालिक मोह और कुबुद्धि जिन्होने दूरीभूत किया था, उन भगवान श्रीकृष्णके श्रीपादपद्मों-में मेरी अचला प्रीति हो ॥३ ॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्त्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

'मैं बिना अस्त्र ग्रहण किये केवल सहायता मात्र करूँगा'—भगवानने अपनी ऐसी प्रतिज्ञा को तोड़कर 'श्रीकृष्णको मैं शस्त्र धारण कराकर छोड़ूँगा'—ऐसी मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए अर्जुनके रथमें रहते-रहते हठात् उतरकर रथ-चक्र ग्रहणपूर्वक अत्यन्त क्रोधके साथ प्रबल वेगसे मेरी ओर छलाँग मारी। उस समय अपनी नरलीला-अभिनयकी विस्मृतिके कारण उनके उदरस्थित सभी प्राणी और ब्रह्माण्डके भारसे प्रत्येक-पद विक्षेप करते समय पृथ्वी काँपने और विचलित होने लगी। उस समय उनका उत्तरीय वस्त्र भूमिमें गिर पड़ा। हाथीको मारनेके लिए सिंह जिस प्रकार प्रबल वेग से टूट पड़ता है, उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण भी मेरे ऊपर टूट पड़े थे ॥३७॥

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥

उस समय विस्मयापन्न धनुर्द्धारी मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत हो जानेके कारण जिनका कवच टूट गया था और जो अर्जुनद्वारा निषेध करने पर भी उसे अतिक्रम करते हुए प्रबल वेगसे मुझे वध करनेके लिए मेरी ओर दौड़ पड़े थे, अर्थात् साधारण लोगों की दृष्टिमें अर्जुनपक्षके व्यक्तिविशेष जैसे दीख पड़ने पर भी मेरे प्रति जिन्होंने अपार अनुग्रह किया था, वे ही भगवान मुकुन्द मेरे एकमात्र अवलम्बन और आश्रयदाता हो ॥३८॥

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये
भगवति रतिरस्तु मे मुमुर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥३९॥

मैंने दिव्यदृष्टिके प्रभावसे देखा कि इस महाभारत युद्धमें जो सभी योद्धा मारे गये, वे सभी जिनका दर्शन कर सारूप्य नामक मुक्ति प्राप्त किये, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथकी भली-भाँति रक्षा कर रहे हैं। उनके बाएँ हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक थी। इस प्रकार वे अर्जुनके सारथिके रूपमें शोभा पा रहे थे। प्राकृत दृष्टिमें यह अन्याय जैसे दीखने पर भी यह उनके भक्तवात्सल्यका प्रभाव है। ऐसे उन अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न श्रीकृष्णके प्रति मेरी इस मरणासन्न अवस्थामें निश्चला प्रीति हो ॥२९॥

ललितगतिविलासवल्गुहास -
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगमन् किल यस्य गोपवध्वः॥४०॥

श्रीकृष्णकी सुन्दर आकर्षक ललितगति, रासादि विलास, मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवनद्वारा अत्यन्त मानको प्राप्त कर गोपियाँ तन्मय हो गयी थीं। वे श्रीकृष्णके अन्तर्धान होने पर उनके प्रेमोन्मादमें इतनी उन्मत्त हो गईं कि अपने आपको भी भूलकर उनकी गोवर्द्धन-

धारणादि लीलाओंका अनुकरण करने लगीं थीं। उनके स्वरूपको गोपियोंने इस प्रकार प्राप्त किया था। ऐसे श्रीकृष्णके प्रति मेरी परम प्रीति बनी रहे ॥४०॥

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः—
सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशि गोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

मुनिगण और श्रेष्ठ राजाओंद्वारा परिपूर्ण सभा-मण्डपमें, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर महाराजके राजसूय-यज्ञका अवसर उपस्थित हुआ था, ये श्रीकृष्णने सबकी दृष्टिको अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और सबके प्रीति और आदरके पात्र हुए थे। वे ही विश्वात्मा श्रीकृष्ण मेरे सामने प्रकटरूपसे प्रत्यक्ष वर्त्तमान हैं; अहो! यह मेरे लिए कैसा सौभाग्यका विषय है! ॥४१॥

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

जिस प्रकार एक ही सूर्य प्रत्येक प्राणियोंकी दृष्टिमें अधिष्ठान भेदसे भिन्न-भिन्न रूपसे देखे जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनेद्वारा रचित शरीरधारियोंके हृदयोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे अधिष्ठित रहने पर भी दर्शकके योग्यतानुसार अनेक प्रकारसे देखे जाते हैं। ऐसे इन अनादि, जन्मरहित, सम्मुख वर्त्तमान श्रीकृष्णको प्राकृतभेदज्ञान द्वारा उत्पन्न मोहसे विमुक्त होकर मैंने सम्यक् प्रकारसे प्राप्त कर लिया है ॥४२॥

॥ इति श्रीभीष्मदेव कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

# अनर्थ और असत्सिद्धान्त-निरास

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

लिसमोर कॉटेज, लाइमखेरा,
शिलांग, २० अक्टूबर, सन् १९२८

स्नेहविग्रहेषु—

आपके २२ आश्विनका पत्र कलकत्तासे पुनः निर्दिष्ट होकर उसी दिन वर्त्तमान पते पर शिलांगमें मुझे मिला है। यहाँ नाना प्रकारके कार्योंमें नियुक्त रहनेके कारण यथासमय आपके पत्रका उत्तर दे न सका। विलम्बके लिए मुझे क्षमा करें।

अनर्थोंके दास बद्धजीव अपने-अपने अभिलषित वस्तुओंको अर्थ समझकर जिस मार्ग पर चलते हैं, उस मार्गका हम अथवा आप अनुमोदन नहीं करते। निन्दक पापी व्यक्ति अपराधोंका संग्रह कर त्रितापों द्वारा परिपीड़ित होते हैं। श्रीवेदव्यासजीके अनुगत व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभुके वचनोंका अनुशीलन कर परम मंगल प्राप्त करते हैं और अमंगलके पथपर भ्रमण करनेवाले व्यक्तियोंका दुःसङ्ग सर्वथा परित्याग करते हैं। अतएव हमारे श्रीरूपानुग वैष्णवोंने कहा है कि दुःसङ्गका त्याग कर भगवद्भक्तका सङ्ग ग्रहण करना चाहिए। भगवद्भक्त लोग अपने परम हितकारी वचनों द्वारा हमारे द्वारा संचित भोग और अनर्थोंका विनाश करते हैं। अतएव अनर्थयुक्त सभी प्रकारके व्यक्तियोंका संग सब प्रकारसे ही परित्याज्य है। अनर्थयुक्त व्यक्ति कृष्ण-सेवाकी छलना कर भक्तिका आड़ लेकर जो दुराचारिता या स्वेच्छाचारिता प्रकाश करते हैं, वह उनकी शैतानी मात्र है। उसे हम कदापि भक्ति नहीं कह सकते। उन अपराधियोंका संगप्रभाव आपके चित्तके ऊपर किसी प्रकारसे विक्रम प्रकाश न करें, इसके लिए आप सर्वदा सतर्कताका अवलम्बन करेंगे।

अनर्थमय गौड़ीय-वैष्णवविरोधी अपराधी व्यक्ति गौड़ीय वैष्णवोंके आचरण-व्यवहार को न समझकर उनके सम्बन्धमें एक भ्रमपूर्ण धारणा कर लेते हैं। उस भ्रममें पतित होकर वे लोग कंस, दन्तवक्त्र, शिशुपाल आदिके अधस्तन (अनुयायी) रूपसे जन्म ग्रहण कर वैष्णवोंका विरोध करते रहते हैं। इस दुःसंगको परित्याग करने की तरह और कोई भजनका अनुकूल कार्य नहीं हो सकता। जिनके अनर्थोंका विनाश शीघ्र ही होनेवाला है, वे लोग ही आपकी हरिकथा सुनेंगे और अपने प्रयोजनको प्राप्त करनेकी चेष्टा कर उसमें सफलता प्राप्त करेंगे।

आप दुःसंग परित्याग करनेके लिए नामसंख्याको बढ़ानेकी चेष्टा करें। प्रति दिन एक

लाख नाम ग्रहण करनेपर अपराधी व्यक्ति आपके भजनमें किसी प्रकारसे बाधा नहीं दे सकते। जिससे प्रति दिन एक लाख नाम ग्रहण किया जा सके, इसके लिए आप समय निकलने की चेष्टा करेंगे। आप सर्वदा ही 'गौड़ीय' पाठ करें और 'गौड़ीय' पाठ कर निरपराधी श्रोताओंको भी सुनाकर उनका कल्याण करेंगे।

अपराधी व्यक्ति कनक-कामिनी - प्रतिष्ठा संग्रह कर नरकको गमन करते हैं। उनके प्रति मन ही मन दया रखेंगे। उसीसे उन लोगोंका मंगल होगा। सूर्यके अनस्तित्वके सम्बन्धमें यदि बहुतसे लोग चीख-चीखकर प्रचार करें, तो उसके द्वारा प्रचण्ड तेजयुक्त सूर्यके स्वभाव या अस्तित्वका विनाश नहीं होता। अतएव यथार्थ शुद्ध भक्तोंके विरुद्धमें अपराधी व्यक्ति जिन सभी विरुद्ध बातोंका प्रचार करते हैं, उससे उन गौड़ीय भक्तोंकी किसी प्रकारसे कोई हानि नहीं होती। जो ऐसे अपराधमें सर्वदा व्यस्त हैं, उन लोगोंका ही अमंगल हुआ करता है। महावदान्य श्रीश्रीगौरचन्द्र महाप्रभुने अपराधी व्यक्तियोंके त्रितापोंको दूर करनेके लिए जो व्यवस्था प्रचार की है, उसकी निन्दा करनेमें ही अनर्थयुक्त प्राकृत पण्डिताभिमानी व्यक्ति सर्वदा व्यस्त रहेंगे। अनर्थका गुरुदेव महानर्थ है। वे भी उसे अनर्थ सागरमें अनाथ अवस्थामें डालकर स्वयं वहाँसे दूर हट जाते हैं।

आपका नाम—हृदयानन्द है, और अपराधी, नाथहीन व्यक्तिका नाम—'अनर्थ' है। है। इसे आप सर्वदा याद रखेंगे।

आपके प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें दे रहा हूँ—(१) वैष्णवविद्वेषी शाक्त मतावलम्बी व्यक्ति अनभिज्ञ व्यक्तियोंकी बुद्धिहीनताको बढ़ानेके लिये अधोक्षज वस्तु विष्णुतत्त्वके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी मनगढ़न्त बातें कहा करते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र विष्णुतत्त्व हैं। विष्णुशक्ति तीन प्रकारकी है। बहिरङ्गा शक्ति ही माया शक्ति या महामाया कहलाती है। वे आसुरी प्रवृत्तिके व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिए नाना प्रकारके उपायों द्वारा अपराधी व्यक्तियोंको विष्णुभक्तिसे दूर रखती हैं। आसुरिक व्यक्ति इसीके योग्य हैं। 'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्' श्लोक ही इसका प्रमाण है। भगवानकी अन्तरङ्गा स्वरूप शक्ति ही श्रीसीतादेवीके रूपमें प्रकटित हुई हैं। वे अनन्यताके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करती हैं। जो व्यक्ति महामायाको श्रीसीतादेवीसे अलग मानकर उन्हें भोग करनेकी इच्छा रखते हैं, ऐसे रावणके विचार अवलम्बनकारी व्यक्तियोंके निकट महामाया ही बहुरूपिणी होकर नाना प्रकारकी असुर-मोहिनी लीलाएँ दिखलाती हैं। असमशील व्यक्ति अपनी-अपनी कुप्रवृत्तिके वशीभूत होकर भगवच्चरणोंमें अपराधी हो पड़ते हैं। वे लोग नाना प्रकारसे प्रेयः स्वरूप कामका विचार

ही ग्रहण करते हैं। उसके फलस्वरूप नील-कमलके बदलेमें भगवान् रामचन्द्रद्वारा अपने नेत्रोंको उत्पाटित करनेकी काल्पनिक घटना भगवद्विमुख तामसिक व्यक्तियोंके लिये तामसिक उपपुराणोंमें लिख दी गई है। श्रीवाल्मीकि ऋषिने अपने द्वारा लिखित श्रीराम-चरित्र वर्णन करते समय ऐसी अपराधजनक बात नहीं कही है। जिन भगवान् रामचन्द्रकी गौणी शक्तिद्वारा यह जड़ जगत रचित हुआ है, वे शक्ति ही रामचन्द्रजीके चरणाश्रित भक्तोंकी आश्रयदात्री मुक्तिस्वरूपिणी हैं। 'श्रीकृष्ण-कर्णामृत' के 'भक्तिस्त्वयि स्थिरचरा' श्लोककी आलोचना करने पर आप जान सकेंगे कि कैवल्यदायिनी शक्ति मुक्तिदेवी महामाया भगवद् भक्तोंके निकट हाथ जोड़कर सेवा करनेके लिए नित्यकाल ही अवस्थिता हैं। अतएव मुक्तिदायिनी देवीको श्रीरामचन्द्रजीके पश्चात् भागमें नित्यकाल ही गर्हित रूपसे अवस्थान करना पड़ता है। श्रीरामचन्द्रजी कदापि उनकी पूजा नहीं करते। रावणके विचारका अनुसरण करनेवाले व्यक्ति लोग जगल्लक्ष्मी देवीको हरण करनेकी इच्छासे दुरभिसन्धि-मूलक तामस विचारका अवलम्बन करते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रको तटस्था शक्तिद्वारा उत्पन्न जीवकुल इच्छा करनेपर रावणकी सेवामें उनकी आराध्या देवीकी सहायता की थी—यह बात श्रीरामचन्द्रपर आरोप कर सकते हैं। अनर्थयुक्त शक्ति-पूजक व्यक्ति लोग गायत्री-गानकारी शुद्ध चिच्छक्तिके अनुगत भक्त लोगोंको किसी प्रकारसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। अहङ्कार-विमूढ़ात्मा, कर्मकाण्डी व्यक्ति इन सभी बातोंकी आवश्यकता समझ नहीं सकते, क्योंकि वे लोग मूढ़ता द्वारा विकृत बुद्धि प्राप्त करनेके ही योग्य हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जिस समय उन्हें कृपा कर बुद्धि-योग प्रदान करेंगे, उसी समय वे लोग अपने दुष्कर्मोंके लिए पश्चाताप करेंगे। भगवान् सर्वदा ही निरुपाधिक शुद्धभक्तोंकी सेवा किया करते हैं। उनकी मायाशक्ति स्वरूपतः भगवानकी ही सेवा कर रही हैं। उस सेवासे विमुख व्यक्तियोंको सेवोन्मुख होनेमें बाधा देना ही उनकी भगवत्सेवा है। भोगी व्यक्ति लोग उस महामायाकी सेवा कर भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अन्तरंगा शक्तिकी सेवासे वंचित होते हैं। अतएव महामाया भगवान् रामचन्द्रसे कदापि श्रेष्ठ तत्त्व नहीं हैं।

श्रीमद्भागवतके १ म स्कन्ध, ७ वें अध्याय में कहा गया है—भगवानके अधीनस्थ या पश्चात् भागमें अवस्थिता माया भगवानके आदरकी वस्तु नहीं है। जीवोंका मोहन करना ही इस माया शक्तिका कार्य है। भगवान कदापि महामायाकी पूजा नहीं करते या माया-मिश्रित नहीं होते। जिस समय निर्बोध जीव भगवानको मायाकी पूजामें नियुक्त जैसे देखते हैं, उस समय जीवमें शम्भुता विचार उपस्थित होता है। विष्णु कदापि मायाके अधीन नहीं हैं। परन्तु विष्णु व्यतीत और सभी ही माया के अधीन हैं। विष्णु अद्वय-ज्ञान वस्तु हैं।

उनसे भेदबुद्धि करने पर जो द्वैत-ज्ञान उदय होता है, वह अशुद्ध-द्वैतवाद मात्र है।

"द्वैते भद्राभद्र ज्ञान-सब मनं धर्म। एइ भाल, एइ मन्द, एई सब भ्रम।" वैकुण्ठवस्तु विष्णु कदापि मायाधीन नहीं हैं; वे मायाधीश हैं। अतएव कहा गया है—"मायाधीश माया-वश ईश्वरे जीवे भेद।".

२. श्रीरामचन्द्र, श्रीबलराम, श्रीकृष्ण—ये सभी ही विष्णुतत्त्व हैं और मायाधीश हैं। उनके जो सभी भोगके उपकरणस्वरूप वस्तुएँ हैं, वे सभी वस्तुएँ ही अप्राकृत हैं। हम लोग बद्धजीव होनेके कारण मायाके अधीन हैं। अतएव प्राकृत विचारको अप्राकृत वस्तुमें आरोप करनेकी कुचेष्टा हमारी विचार-भ्रान्ति मात्र है। श्रीकृष्ण गोवर्द्धन धारण कर सकते हैं, किन्तु हम लोग मात्र एक सौ मन वजनके पत्थरके टुकड़ेसे दबकर एक सरसोंके दानेकी तरह पिसकर मायाबद्धता प्रकट करते हैं। कृष्ण और बलराम रासस्थलीमें बहुतसे आश्रित जनोंके सेव्य-तत्त्व हैं। अतएव हम भी ऐसा कार्य करनेका कुप्रयास करने पर कारागारमें बन्द होनेकी योग्यता प्राप्त करते हैं। अप्राकृत कृष्ण और बलराम यदि मायातीत राज्यमें मत्स्य और पशुकी सेवा ग्रहण करते हैं, तो उन्हें किसी प्रकारसे कोई क्लेश नहीं होता। इसके विपरीत यदि हम लोग किसीकी हिंसा करनेकी बात तो दूर रहे, किन्तु केवल असम्मानसूचक वाक्य भी कहे, उससे हिंसित निन्दित प्राणी दुःखित होता है। हमारे अवैध कार्य अप्राकृत विग्रहस्वरूप भगवानके लीलाओंके साथ कदापि तुलना करने योग्य नहीं हैं।

३. श्रीरामचन्द्र पूर्णब्रह्म सनातन हैं। विष्णुविग्रहमात्र ही पूर्णब्रह्म सनातन हैं। विष्णु-विग्रह कदापि मायारचित इन्द्रियग्राह्य भोग्य-वस्तु विशेष नहीं हैं।

४. भक्ति-योगमाया या प्रेम-योगमाया नित्या हैं; वे मायारचित नश्वर पदार्थ नहीं हैं। भक्ति-योगमाया ही श्रीकृष्णरूप परमात्मा के साथ शुद्धावस्था-प्राप्त जीवात्माका संयोग कराती हैं। योगमायाको महामाया कहनेसे प्रपञ्चका वृत्तिविशेष या अप्राकृत वस्तुको प्राकृत मानना हुआ। प्राकृत जगतके वस्तु-समूहमें परस्पर भेद है और उनकी संयोग-कारिणी शक्ति हेय, तुच्छ और सभी प्रकारके दोषोंके आकर-स्वरूपा है। अप्राकृत जगतमें ऐसी ही विचित्रतामें कोई दोष नहीं है। क्योंकि 'दोष' नामक हेय पदार्थके लिये इस भूताकाश की तरह परव्योम या चित्-जगतमें स्थान नहीं है। योगमाया भगवान् श्रीहरिकी चिच्छक्ति है, यह बात श्रीमार्कण्डेय पुराणमें सप्तशती-चण्डीमें लिखी हुई है। हरिके वस्तुओंमें योग-मायाका अधिष्ठान है। उनके पाँच प्रकारके रसाश्रित आश्रयजातीय सेवक-सेविकाओंकी कृष्णसेवाके उपयुक्त उद्दीपन-भाव स्थायी-भाव-रतिमें मिलित होता है। प्रापञ्चिक जड़ विचार लेकर अप्राकृत वैचित्र्य पर दोषारोप करनेकी

कुचेष्टा निर्बुद्धिता या बुद्धिहीनताका परिचय मात्र है । भजन प्रभावसे चित्तशुद्धि होने पर इन सब बातोंकी उपलब्धि की जा सकती है।

५. ऐश्वर्यपर सेवोन्मुखता द्वारा विचार करने पर 'हरे राम' शब्दका उच्चारण करनेसे दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्रजीको लक्षित किया है। किन्तु माधुर्यपर भक्तलोग इस शब्द द्वारा श्रीगोपिकारमण या श्रीराधारमण श्रीकृष्ण-चन्द्रको ही लक्ष्य करते हैं। वे श्रीनन्द महाराज के पुत्र हैं। जहाँ 'राम' शब्द द्वारा राधा-रमणकी सेवाका उद्देश्य है, वहाँ 'हरा' शब्दके सम्बोधन-पद हरे' द्वारा परा शक्तिकी मूल-आकर-विग्रहधारिणी श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीको ही लक्ष्य किया गया है।

दीक्षा-समाप्ति होनेके पूर्व ही कुछ लोग 'दीक्षा पूर्ण हो गई'—ऐसा समझकर श्रीगौड़ीय मठ छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। यदि दुःसंग-प्रभावसे उन लोगोंका अधःपतन हो जाय, तो उनके पूर्वदोष सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाने पर वे लोग फिरसे श्रीगौड़ीय मठकी सेवामें नियुक्त हो सकेंगे । जिन सौभाग्यवान व्यक्तियोंने अनन्यभजनके मूलमन्त्रका आभासमात्र भी प्राप्त किया है, कदापि उन लोगोंके पतनकी संभावना नहीं है। तब पूर्व-पूर्व वैष्णवापराधोंके फलसे वे लोग श्रीगौड़ीय मठके आश्रित होने पर भी मठका शासन स्वीकार नहीं करते, यह उन लोगोंके व्यक्तिगत हृदय-दौर्बल्यके कारण है। भगवान्‌की कृपासे उनके हृदयमें सेवा-प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ने पर उनमें किसी प्रकार की दुष्प्रवृत्तिकी संभावना नहीं होगी। आप बड़े यत्नके साथ इन सभी विच्युत व्यक्तियोंकी सहायता करें और उनका यथार्थ मंगल करने का प्रयास करें—यही यथार्थ बन्धुका परिचय है।

जो सभी ज्ञानरहित अल्पज्ञ व्यक्ति महा-भागवत वैष्णवोंको महावदान्य - लीलाको समझनेमें असमर्थ हैं, वे सभी अविवेकी व्यक्ति यही प्रश्न किया करते हैं कि श्रीश्रीगौरसुन्दरके चरणाश्रित काला कृष्णदास भट्टधारी लोगोंके स्त्रियों द्वारा क्यों मोहित हो गया ? क्यों छोटे हरिदासने श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाकी छलनासे भक्तका आदर्श ग्रहण न कर इतर चेष्टा की थी? क्यों रामचन्द्रपुरीने माधवेन्द्रपुरीजीका आनु-गत्य छोड़ दिया था ? श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके कुछ सन्तानब्रुव और श्रीवीरभद्र प्रभुके कुछ शिष्यब्रुव क्यों स्वतन्त्र हो गये ? अतत्त्वज्ञ व्यक्ति यथार्थ सत्यको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर कनिष्ठ और मध्यमाधिकारगत विचार को दूषित कर जो सभी अयथा बातोंका प्रचार करते हैं, वे अनभिज्ञ व्यक्तियोंके लिए आदर-णीय हो सकती हैं; किन्तु जब वे सभी व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु या उनके आश्रित महाभाग-वतोंकी लोकातीत, महावदान्य लीलाके तात्पर्य में यथार्थ रूपसे प्रविष्ट होंगे, उस समय वे लोग जान सकेंगे कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने अयोग्य अत्यन्त पामर, सर्वसाधारण व्यक्तियोंको मंगल-पथमें लानेके लिये 'जीवमात्र ही स्व-

रूपतः कृष्णदास है'—यह बात कही है। इस लिए कृष्णदास्य तात्कालिक भोगोन्मुखताके कारण विपरीत रूपसे जिस कृष्ण-विमुखताके रूपमें दिखलाई देता है, वह इस मायिक राज्य के प्रत्यक्षज्ञानका निन्दनीय कार्य होने पर भी "अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्" श्लोकका तात्पर्य उल्लंघन नहीं करता। महाभागवत लोग सभी व्यक्तियोंको अपना गुरु समझते हैं। अतएव महाभागवत ही एकमात्र जगद्गुरु है।

श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी विचार-प्रणाली श्रीमद्भागवत द्वारा अनुमोदित है। श्रीमद्भागवत विद्वेषी व्यक्ति उनके सूक्ष्म विचारोंमें प्रवेश करनेमें स्वभावतः ही असमर्थ होकर मूलतात्पर्यको ग्रहण करनेसे वंचित हैं। इसलिये कृष्णसेवारहित कामादि छः शत्रुओंके वशीभूत व्यक्तियोंका विचार श्रीगौड़ीय वैष्णवों के आचारसम्पन्न विचारसे सम्पूर्ण रूपसे विपरीत है। भोगियोंका कर्मकाण्डीय विचार भक्तिपथके आश्रित भागवत व्यक्तियोंके विचार से सम्पूर्ण प्रकारसे पृथक् है।

श्रील ठाकुर हरिदासने कहा था—मेरी नामग्रहणरूप दीक्षा समाप्त न होनेतक मैं पाप या पुण्यसंग्रहरूप कर्ममें नियुक्त होनेमें असमर्थ हूँ। अतएव श्रीमद्भागवतका कहना है—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

अनभिज्ञ व्यक्ति यदि उनकी सङ्कीर्ण-शिक्षा के वशीभूत होकर श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके या श्रीमद्भागवतके विरुद्ध आचरण करें, तो वे ही अपराधी होंगे। इससे गौड़ीय वैष्णवोंकी किसी प्रकारसे कोई हानि न होगी। जो व्यक्ति पापके कीचड़में निमग्न होकर दुष्कृतिका दण्ड प्राप्त करते हैं, वे लोग ही श्रीमद्भागवत-विमुख होकर श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी निन्दा किया करते हैं। उनकी योग्यता वहीं तक सीमित है। जिस प्रकार पुरीष ( पायखाने ) पर बैठनेवाली मक्खी उस दुर्गन्धपूर्ण वस्तुमें आदर कर उसीके लिये आग्रहयुक्त है, उसी प्रकार घृणित स्वभाववाले व्यक्ति श्रीमद्भागवत और तदाश्रित श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी निन्दा कर अपनी घृणित रुचिका परिचय देते हैं।

जो व्यक्ति दिव्य ज्ञानका अपव्यवहार करने की इच्छा कर कपटतापूर्वक श्रीगौड़ीय वैष्णवों का आनुगत्य स्वीकार करते हैं, उन लोगोंके साथ श्रीगौड़ीय वैष्णवोंका कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता या रहेगा। यह उसी प्रकार है, जिस प्रकारसे नाटक करनेवाले व्यक्तियोंके अभिनयमें वास्तव सत्यका अभाव देखा जाता है। जिस प्रकार कृत्रिम या नकली सोना शुद्ध सोनेका स्थान अधिकारमें नहीं कर सकता, उसी प्रकार कपटतामयी भक्तिका आवरण शुद्धभक्तिके साथ तुलना नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति अभक्त हैं, उनका प्रयोजन त्रिवर्ग-

सेवा या धर्म-अर्थ-काम और मुक्तिवांछा है। श्रीगौड़ीय वैष्णव लोग भक्ति-पथके पथिक होनेके कारण उनमें ऐसी अपस्वार्थयुक्त कपटता रह नहीं सकती। दीक्षाका अभिनय और दिव्य-ज्ञान-प्राप्ति—दोनों एक नहीं हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके निष्कपट भक्त लोग नित्य वर्त्तमान हैं। जो सभी उल्लूके सदृश स्वभाव-युक्त व्यक्ति यथार्थ प्रकाशका दर्शन करनेमें असमर्थ हैं, वे लोग मायावादी, कर्मी या यथेच्छाचारी भक्त हैं।

आप इन सभी बातोंकी स्थिर बुद्धिसे आलोचना करें और जिनका मंगल करना चाहें, उन्हें भी ये बातें सुनावें। यदि कोई अवसर मिलें, तो प्रत्यक्ष रूपसे इन सभी बातों की आलोचना कर संशय दूर कर सकेंगे। हम सभी सकुशल हैं। इति

नित्याशीर्वादक—
श्रीसिद्धान्त सरस्वती

( जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर )

---

# हरि, मेटौ विपति हमारी

हरि, हौं महा अधम संसारी।
आन समुझ मैं बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी॥
धर्म-सत्त मेरे पितु-माता, ते दोउ दिये बिड़ारी।
ज्ञान-विवेक विरोधे दोऊ, हते बन्धु हितकारी॥
बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी।
सील-संतोष सखा दोउ मेरे, तिन्हैं बिगोवति भारी॥
कपट-लोभ वाके दोउ भैया, ते घर के अधिकारी।
तृष्ना बहिनी, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी॥
अति निसंक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी।
मैं तौ बृद्ध भयौं, वह तरुनी, सदा बयस इकसारी॥
याकैं बस मैं बहु दुःख पायौ, सोभा सबै बिगारी।
करियै कहा, लाज मरियै, जब अपनी जाँघ उघारी॥
अधिक कष्ट मोहि परचौ लोक मैं, जब यह बात उचारी।
सूरदास प्रभु हँसत कहा कहै, मेटौ विपति हमारी॥

# प्रश्नोत्तर

## ( कर्म )

१—कर्म किसे कहते हैं ?

"कर्मी लोग विशुद्ध कृष्ण-प्रसाद या कृष्ण-कृपाका अनुसंधान नहीं करते। यद्यपि बाहरी रूपसे कृष्णका सन्धान करते हैं, किन्तु फिर भी उन लोगोंका मूल तात्पर्य है—जिस किसी प्रकारसे कोई प्राकृत सुख प्राप्त करना। स्वार्थपर कार्यको ही कर्म कहते हैं।"

—'सङ्गत्याग', स० तो० ११।११

२—विष्णुके उद्देश्यसे अनुष्ठित होनेपर भी क्या इष्टापूर्त्तादिमें साक्षात् चित्-प्रवृत्ति है ?

"विष्णुको यज्ञेश्वरके रूपमें मानकर इष्टा-पूर्त्ति आदि कर्म करनेपर भी साक्षात् चिन्प्रवृत्ति उन कर्मोंमें नहीं है।"

—'नाम माहात्म्य सूचना' ह० चि०

३—'अदृष्ट' किसे कहते हैं ?

"सभी जीव पूर्व-संस्कारोंके अनुसार अपना अपना स्वभाव प्राप्त करते हैं; उसी स्वभावके अनुसार जो चेष्टा जीव करते हैं, उसे ही 'अदृष्ट' या 'कर्मफल' कहते हैं। पूर्व-पूर्व जन्मों में जीवोंने जैसा-जैसा कर्म किया है, उसीके अनुसार उन लोगोंकी स्वभाव-चेष्टाएँ होती हैं।"

—ब्र० स० ५।२३

४—कर्म-ज्ञानकी मलिनता कैसे दूरीभूत होती है ?

"कर्मके काम्यफलका विनाश होने पर केवल भगवत्प्रीतिके लिए उस कर्मको अर्पित करने पर उस कर्मका भक्तिद्वारा शोधन होता है। मोक्षके प्रति अनिच्छा या वितृष्णा उत्पन्न कराकर भगवत्-सेवादिमें प्रीति-उत्पादन द्वारा वैराग्य या ज्ञानकी भक्तिशोधित अवस्था होती है। अद्वैत-आत्मतत्त्व बोधादिका परित्याग कर ज्ञान जब भगवदीयत्व-बुद्धि उत्पत्ति करता है, तब ज्ञान भक्तिद्वारा शोधित होता है।"

—बृ० भा० तात्पर्यानुवाद

५—आस्तिकोंका भाग्य क्या अविचारित है ?

"नास्तिक लोगोंकी कर्म-घटनाकी तरह आस्तिकोंका भाग्य अविचारित नहीं है। जीव का भाग्य जीवके ही कर्मानुसार विचारित फल-विशेष है।"

—श्रीम० शि० ८ म प०

६—कर्ममें किसका कैसा कर्त्तृत्व है ?

"जीव जो कार्य करते हैं, उनमें उनका मूल कर्त्तृत्व सर्वदा ही रहता है। प्रकृति जो उस कार्यमें सहायता प्रदान करती है, उसमें उसका गौण-कर्त्तृत्व है। फल-प्रदान करनेके

विषयमें ईश्वरका अनुषङ्ग-कर्त्तृत्व है। जीव स्वेच्छापूर्वक अविद्यारूपी मायामें अभिनिविष्ट होते हैं; अतएव उनका मूल-कर्त्तृत्व कदापि लोप नहीं होता। अविद्या-प्रवेशके बाद जीव जितने भी कर्म करते हैं, वे सभी कर्म फलोन्मुख होने पर उन्हें 'भाग्य' कहा जाता है।"

—श्रीम० शि० ८ म प०

७—कर्म अनादि क्यों है ?

"मैं कृष्णका दास हूँ"—इस बातको भूल जाना ही अविद्या है। वह अविद्या जड़कालसे आरम्भ नहीं हुई है। तटस्थ सन्धि-स्थलमें वह कर्ममूल उदित हुआ है। अतएव जड़कालमें कर्मका आदि पाया नहीं जाता। अतएव कर्म अनादि है।"

—जै० ध० १६ श अ०

८—भक्ति और भगवद्विमुख कर्ममें पार्थक्य क्या है ?

"कृष्णकी कृपा प्राप्त करनेके लिए यदि कोई कर्म करें, उसी कर्मका नाम ही भक्ति है। जो कर्म प्राकृत फल या बहिर्मुखता ज्ञान प्रदान करता है, वह कर्म भगवद्बहिर्मुख है।"

—'सङ्गत्याग' स० तो० ११।११

९—कर्म किस अवस्थामें भक्तिके रूपमें बदल जाता है ?

"कर्मकी अवस्था परिवर्त्तन होनेके पहले तीन अवस्थाएँ देखी जाती हैं—निष्काम-अवस्था, कर्मार्पण-अवस्था और कर्मयोगावस्था। इन तीनों अवस्थाओंको अतिक्रम करने पर कर्मका स्वरूप बदलकर परिचर्यारूप भक्ति हो पड़ता है।"

—श्रीम० शि० १० म प०

१०—कर्म और ज्ञान क्या भक्तिप्रदा सुकृति हैं ?

"कर्म भक्तिफल तक जीवको पहुँचाकर स्वयं निवृत्त हो जाता है। वैराग्य और विवेक प्रायः ही अभेद ब्रह्म-ज्ञानमें जीवको डुबाये रखते हैं। ब्रह्म-ज्ञान प्रायः ही जीवको भगवान के श्रीचरणोंसे वंचित रखता है। अतएव इन्हें विश्वास कर भक्तिप्रदा सुकृति नहीं कह सकते।"

—जैवधर्म १७ वाँ अ०

११—वेदशास्त्र किस साधनको भगवत्प्राप्ति का विघ्नशून्य मार्ग बतलाते हैं ?

"वेद और पुराणशास्त्रने अनेक प्रकारके उपायोंके बारेमें स्थान-स्थान पर निर्देश दिया है। किसी दिशामें भीमरुल-वरुली अर्थात् बोलता (ततैया या नर्रे) रूप कर्मकाण्ड, किसी दिशामें ज्ञान-काण्ड रूप यक्ष, किसी दिशामें कृष्णवर्ण अजगर रूप योगगत कैवल्य और किसी दिशामें रक्षित धनका पात्र अल्प परिश्रम द्वारा ही हाथमें आ जाता है। अतएव वेद-शास्त्रोंने कर्म, ज्ञान और योग परित्याग पूर्वक भक्तिपथ द्वारा ही कृष्ण-प्राप्ति होती है, यह बात बतलाई है।"

—अ० प्रा० भा० म० २०।१३५

१२—कर्मी लोग क्या भगवत्सेवक हैं ?

"प्रथम सङ्गतिमें ( अपने सुखप्रयोजक कर्मसङ्गतिमें ) जो व्यक्ति बद्ध हो पड़ते हैं, वे लोग कर्मको ही प्रधान समझकर 'भगवान्' को भी एक कर्माङ्ग बनानेका प्रयास करते हैं। उनका फल भी नित्य-लक्षणमें देखा नहीं जाता। उनकी सङ्गति निर्दोष नहीं है। उन लोगोंके जीवनमें भगवानकी साधन-स्फूर्त्ति नहीं है—विधिकी अधीनता ही सर्वत्र है। उन्हें कर्मी कहते हैं।"

—चै० शि० ८ म धारा, उपसंहार

१३—कर्मद्वारा क्या कर्मका नाश होता है ? कर्मकी सार्थकता कहाँ है ?

"जिस कारण या वस्तुके द्वारा मनुष्योंको रोग होता है, उसे ही रोग दूर करनेके लिए देने पर रोग कदापि अच्छा नहीं होता। कर्म-काण्डकी सारी व्यवस्थाएँ ही संसार-रोगके कारणस्वरूप हैं। उन्हें निष्काम भावसे किया जाय या ईश्वरार्पित भावसे किया जाय, कदापि संसारक्षयरूप शुभ फल प्राप्त नहीं होता। कर्मको केवल जीवन-यात्रा निर्वाहके उपायके रूपमें ग्रहण कर बादमें भक्तिस्वरूप मुख्य उपायके सहायक रूपसे ग्रहण करने पर ही कर्मका स्वरूपतः विनाश सम्भव है। भगवानकी प्रीतिके लिए कर्ममात्र स्वीकार करनेसे और भक्तिके अधीन सम्बन्ध-ज्ञानको स्वीकार करनेपर सभी कर्म ही भक्तियोगमें बदल जाते हैं। उस भक्तियोगगत कृष्ण-संसाराश्रित कर्म सभी करते हुए भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार निरन्तर श्रीकृष्ण के गुण-नामादि स्मरण और कीर्त्तन करना ही समस्त शास्त्रोंका अभिधेय है।"

—श्रीम० शि० १० म प०

१४—कर्मियोंकी कृष्ण-पूजा और भक्तोंकी कृष्ण-पूजामें पार्थक्य क्या है ?

"वैष्णवोंकी साधन-भक्ति केवल सिद्ध भक्तिका उदय करानेके लिए है। अवैष्णव लोग उन सभी अङ्गोंका साधन भोग और मोक्ष पानेके लिए करते हैं। साधन-क्रियामें आकार-भेद देखा नहीं जाता, किन्तु निष्ठा-भेद ही मूलकारण है। कर्माङ्गमें कृष्णकी पूजा कर चित्तशोधन और मुक्तिकी प्राप्ति होती है या रोग शान्ति और पार्थिव फल प्राप्त होते हैं। भक्तिके अङ्गमें उस पूजाके द्वारा केवल कृष्णनाममें प्रीति उत्पन्न होती है। कर्मियोंके एकादशी-व्रतसे पाप नष्ट होते हैं, किन्तु भक्तों के एकादशी-व्रत-पालन द्वारा हरिभक्तिकी क्रमशः वृद्धि होती है। कितना भेद है !"

—जै० ध० ५ म अ०

१५—बहिर्मुख-संसार और वैष्णव-संसार में भेद क्या है ?

"बहिर्मुख-संसार और वैष्णव-संसारमें केवलमात्र निष्ठाका ही भेद है। दूसरा कोई भेद नहीं है। बहिर्मुख व्यक्ति लोग भी विवाह करते हैं, अर्थ एकत्र करते हैं, संसार बसाते हैं, गृहका निर्माण करते हैं, न्याय का नाम कर

सभी कार्य करते हैं और सन्तानादि उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे लोग उन सभी कार्योंद्वारा जगतके सुखको बढ़ानेकी अथवा अपने सुखकी इच्छा रखते हैं। किन्तु वैष्णवगण उन सभी कार्योंका उन्हींकी तरह अनुष्ठान करके भी उन सभी कार्योंका फल स्वयं आत्मसात् नहीं करते, किन्तु भगवानकी सेवाके लिए अर्पण कर देते हैं। वैष्णवगण अन्तमें परम सन्तोष प्राप्त करते हैं, किन्तु बहिर्मुख व्यक्ति अत्यन्त अधिक अभिलाषा या भुक्ति-मुक्ति स्पृहाजनित काम या क्रोधके वशीभूत होकर शान्तिहीन हो पड़ते हैं।"

—चै० शि० ३।२

१६—साधुनिन्दा रूप नामापराध कब होता है ?

"कर्माभिमान और ज्ञानाभिमान द्वारा ही भक्तसाधुओंके श्रीचरणोंमें अपराध हो पड़ता है। अतएव साधुनिन्दारूप नामापराध अभक्तों के हृदयमें नृत्य करता रहता है।"

—'सङ्गत्याग' स० तो० ११।११

१७—पाप और पुण्य क्या आत्माके स्वरूप-गत धर्म हैं ?

"पाप और पुण्य—ये दोनों ही साम्बन्धिक हैं। आत्माके स्वरूपगत धर्म नहीं हैं। जो कर्म या वासना साम्बन्धिक रूपसे आत्माकी स्वरूप-प्राप्तिमें सहायता करनेपर कर भी सकते हैं, वे पुण्य हैं। जिस कर्म द्वारा ऐसी सहायता संभावना नहीं, वही पाप है।"

कृ० स० १०।२

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

---

## प्रेमैकनिष्ठ भक्त की निष्ठा

रसं प्रशंसन्तु कवित्वनिष्ठा ब्रह्मामृतं वेदशिरोनिष्ठा।
वयं तु गुंजाकलितावतंसं गृहीतवंशं कमपि श्रयामः॥

श्रीयादवेन्द्रपुरीजी कहते हैं—कविताप्रिय व्यक्ति जड़ रस की प्रशंसा करें तो किया करें। वेदके शिरोभाग उपनिषद्को माननेवाले ज्ञानी लोग ब्रह्मामृत की प्रशंसा करते रहें। किन्तु हम तो गुञ्जाओंकी माला और पुष्पोंके आभूषण धारण करनेवाले तथा वंशीवादन करनेवाले किसी अद्भुत गोपकुमार का आश्रय ग्रहण करते हैं। ( पद्यावलीसे )

# वर्त्तमान युगमें भगवन्नामकी उपादेयता

वर्त्तमान समयमें पश्चिमीय देशोंकी ही नहीं, बल्कि परम पुनीत भारतकी भी आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक विचारधारामें महान् परिवर्त्तन हो गया है। निरन्तर भौतिकी सम्पत्तिकी वृद्धिसे दैनन्दिन आवश्यकताएँ, भोग-लिप्सा, स्वार्थपरता, सत्ताका प्रेम, मिथ्याभिमान, मोह, द्रोह, जगदाधार परमात्माके प्रति अनास्था—आदिका प्रचार हो रहा है। अज्ञानान्धकारने सत्यके प्रकाशको आवृत कर रखा है। आत्मज्ञान, त्याग, परदुःखकातरता, सत्यनिष्ठा, आदर्शप्रियता, आत्मसंयम एवम् चरित्र-निर्माणके तत्त्व-गुणादिको व्यावहारिक रूप देनेका अन्यथा प्रयासमात्र चल रहा है। मानव-समाज अपने-अपने कपटपूर्ण व्यवहार, व्यवसाय, उद्योग, गृहकार्यादि, युद्ध, संघर्ष, परधनापहरण, बलात्कार, हिंसाएँ, शक्तिसे अपने अधिकारकी सुरक्षा, कृत्रिम देश-प्रेमका मुकुट धारण कर यश-सञ्चयमें व्यस्त हैं।

अहोरात्र उदीयमान जड़ विज्ञान जल-स्थल-आकाशका परीक्षण करता हुआ मनुष्यके भीतरी भागोंका निरीक्षण कर जन्म-मृत्युके रहस्य-परिज्ञानमें कृतश्रम है। वनस्पतियों, वृक्षों, जीव-जन्तुओंके अन्वेषणके साथ प्रकृति पर विजयकी आशा बढ़ रही है। जड़ विज्ञानने यन्त्र-मानव सन्तानोंकी उत्पत्तिके नवीन उपकरणोंकी ओर भी अपना हाथ बढ़ा दिया है।

युगकी विचित्रताने सन्तों, भक्तों, वैष्णवों, गुरुजनों, देवता लोगों तथा भगवानके प्रति की जानेवाली श्रद्धा-भक्तिको छीन लिया है। देव-मन्दिरोंके प्रति आदर-भाव क्षीण-सा दीख रहा है।

वैदेशिकी शिक्षा-दीक्षासे प्रभावित जन परमोल्लासके साथ अतुल धनराशि भेंटकर छवि-मन्दिरोंमें आधुनिक देव-देवियोंके समान पूजित, आराध्य माने जानेवाले अभिनेता, अभिनेत्रियोंके दर्शनार्थ देहानुसन्धान भूलकर दौड़ रहे हैं। चित्रपटोंके गीतोंको आबाल-वृद्ध-नर-नारियाँ श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-गानका विषय बनाते हैं और भगवन्नाम श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण आदिकी उपेक्षा करते हुए उन्हें अप्रयोजनीय समझ रहे हैं।

पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, जल, वायुके दैविक, आध्यात्मिक रूपको भौतिक बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। गो–मातृ–पितृ–गुरु–ईश्वर श्रद्धा-भक्ति विसर्जित हो गयी है। वर्ण, आश्रमादिके धर्म, सत्-संस्कार आदि परिहासके विषय बन गये हैं। विनय, शौच, अनुशासन, धैर्य, क्षमा, शम-दम, स्नेहादि सद्गुण नष्ट होकर पाखण्डताने अधिकार जमा लिया है। छल, प्रपञ्च, बाबदूकता, उदरंभरिता ही कर्त्तव्य समझे जा रहे हैं। नारियोंने वैदेशिक साज-सज्जा, शिक्षादिको हृदयङ्गम कर लोकोत्तर चरित्र, भारतीय

मर्यादा, आदर्श, लज्जाशीलता, शालीनता एवं चिरन्तन महत्वको विस्मृत कर दिया है। चारित्रिक-शिक्षाके अभावसे तथा शिक्षाकी व्यावहारिक रूप देनेकी शिथिलतासे छात्रों एवं जन-समाजका जो रूप क्षण-क्षण बदल रहा है, वह समग्र देशके लिए चिन्ताका विषय बन गया है।

इस विकासकी, उन्नतिकी, चरम सीमाको, भौतिक साधनोंकी उपलब्धिको, कृत्रिम आनन्दके वर्त्तमान परिवर्द्धमान रूपको अच्छे विचारशील, चरित्रवान, सदसद् विवेकी, आत्मनिष्ठ, नीतिज्ञ, सदाचारके माननेवाले महापुरुष उपयुक्त नहीं समझते, इसे पतनका रूप मानते हैं। उनका विचार है—जब तक अन्तःपवित्रता, संस्कारोंके प्रति सहज स्नेह, चरित्र-निर्माणकी प्रवृत्ति, आत्मज्ञान की जिज्ञासा, स्वधर्म, देश पर आस्था, आत्म-संयमके शिक्षण-पालनके महत्त्वपूर्ण ध्येयको सतर्कता, तत्परताके साथ जनसमाजमें जागृत नहीं किया जायगा, तब तक हिंसाएँ, उत्पातादि, विपत्तियाँ, राष्ट्रोंकी परस्पर एक-दूसरे पर अधिकार जमानेकी लालसा आदि शान्त नहीं होंगी। न दोष, अपराध, सङ्घर्ष, असन्तोष, जनमद, धनमद, शक्तिमद, सत्तामद, शिक्षामद आदिकी आँधी दूर होगी और न विनाशकारिणी प्रवृत्तियों, भ्रान्तिमयी कुचेष्टाओं, आसुरी भावों, आदिका शमन होगा। प्रत्युत वे अपने परिवारके साथ बढ़ते ही रहेंगे। जनसंख्या की समस्या, खाद्यकी समस्या एवं अन्यान्य विभिन्न समस्याएँ हल नहीं हो सकेंगी। अतः समय पर ही जाग्रत होना है। सचेष्ट होकर रहना है। बाहरी सुधारोंके लिए समयका अपव्यय न कर आन्तरिक सुधार करना है। अन्यथा भारतवर्षकी संस्कृतिके साथ देवत्व और मानवीय रूपका सर्वथा नाश होकर रहेगा।

अतएव सर्वप्रथम हमें श्रेष्ठजनों, सन्त-भक्त-वैष्णवोंका परम कल्याणकारी सत्सङ्ग करना है, जो सद्गुणोंके आकर भारतीय संस्कृतिके, सदाचारके मूर्त्तिमान प्रतीक हैं। सद्शास्त्रों तथा ग्रन्थोंका अनुशीलन नितान्त आवश्यक है। शास्त्रोंमें सत्सङ्गकी बड़ी महिमा है। सत्सङ्गके प्रभावसे अज्ञानान्धकार हटता है, शुद्धभक्तिका प्रकाश होता है। भगवन्नाम स्मरण-कीर्त्तन-श्रवणमें रुचि होकर जीवके स्वाभाविक, देशकालीन, लौकिक, संयोगज, स्पर्शज दोष दूर होते हैं। अपराधों, पापोंका समूल विनाश होता है। इसके उदाहरण असंख्य हैं। नारद—व्यास—वाल्मीकि—ध्रुव—प्रह्लाद आदिने सत्सङ्ग द्वारा ही महानता प्राप्त की। इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा उद्धवको उपदेश दिया है—

सत्-सङ्ग सभी प्रकारकी दुरासक्तियोंका विनाश करता है और अशुभोंको दूर करता है। सत्सङ्गसे जिस प्रकार मैं अधीन हो जाता हूँ, वैसा योग, सांख्य, धर्म (लौकिक), तपस्या, त्याग, स्वाध्याय, इष्टापूर्त्त, दान-दक्षिणा, व्रत-

पालन, तीर्थ-भ्रमण, यम-नियम आदि द्वारा नहीं होता। सत्सङ्ग द्वारा ही दैत्य, राक्षस, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर आदि, मनुष्योंमें शूद्र, स्त्री, वैश्य, अन्त्यज, रजोगुणी तथा तमोगुणी जीवोंने मेरी प्राप्ति की है—

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥

( भा० ११।१२।५-७ )

वृत्रासुर, प्रह्लाद आदि, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ, यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण पत्नियाँ और दूसरे-दूसरे लोगोंने भी सत्सङ्गके प्रभावसे ही मुझे प्राप्त किया था। उन लोगोंने न तो वेदोंका स्वाध्याय किया था और न विधिपूर्वक महापुरुषोंकी उपासना की थी। उन लोगोंने कठिन चन्द्रायण-व्रत, दूसरे अनुष्ठान या तपस्या आदि न की थी। उन लोगोंने केवल सत्सङ्गके प्रभावसे मुझे प्राप्त कर लिया।

सत्सङ्गकी महिमा बतलानेवाली सूक्तियोंसे मालूम होता है कि सत्सङ्ग भगवत्-प्राप्तिमें महान् साधक है। सत्सङ्गसे भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान होता है, भगवान्के नाम-रूप-गुण-लीलादिमें रुचि होती है। भगवान्को पानेके लिए विकलता बढ़ जाती है, जिसके द्वारा भगवान् भक्तके प्रेमरज्जुमें बँध जाते हैं और उसके वशीभूत हो जाते हैं। भगवान्का नाम सर्वपापहारी, दोषहारी, अपराधोंका शमनकर्त्ता है।

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयाः मतिः ॥
न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिः—
स्तथा विशुद्ध्यन्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै—
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥

( भा० ६।२।९--११ )

चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरु-पत्नीगामी, ऐसे लोगोंका संसर्गी; स्त्री, राजा, पिता-माता और गायको मारनेवाला, चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सभीके लिए यही—इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भगवान्के नामोंका उच्चारण किया जाय। क्योंकि भगवन्नामोंके उच्चारणसे मनुष्यकी बुद्धि भगवानके रूप, गुण, लीलादिमें प्रविष्ट हो जाती है और स्वयं भगवान्की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है। बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषि-मुनियोंने पापोंके बहुतसे प्रायश्चित्त— कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं। परन्तु उन प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी

जड़से शुद्धि नहीं होती, जैसे भगवान्‌के नामोंका या उनसे युक्त पदोंका कीर्त्तन करनेसे होता है। क्योंकि वे नाम भगवान्‌के गुण-लीलादिका ज्ञान करानेवाले होते हैं।

भगवन्नामका जिस किसी प्रकारसे उच्चारण करने पर उसके द्वारा अपूर्व-सिद्धि होती है—

सांकेत्यं परिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥
गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च।
प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः॥
( भा० ६।२।१४–१३ )

शास्त्रविद् महाजन लोग यह बात भली प्रकारसे जानते हैं कि अन्य वस्तुको लक्ष्य करके ही हो, किसीका परिहास करनेकी छलसे हो, गीतालाप पूरन करनेके लिए ही हो, अथवा अश्रद्धाके साथ ही क्यों न किया जाय, वैकुण्ठ-वस्तु भगवान्‌का नाम ग्रहण करने मात्र से ही अशेष पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य ऊंचे गृहसे गिरते समय, पथमें जाते हुए, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय, सर्पादि द्वारा डँसते-काटते समय, ज्वरादि रोग द्वारा पीडित होते समय या दण्डादिद्वारा आहत होते समय विवश होकर या अनजानमें 'हरि'—यह शब्द उच्चारण करता है, उसे कदापि नरककी यातना भोग नहीं करनी पड़ती। महर्षियोंने बहुत विचार कर बड़े पापोंके लिए बड़े और छोटे पापोंके लिए छोटे प्रायश्चित्तादिकी व्यवस्था की है। प्रायश्चित्तके लिए ऐसा ठीक हो सकता है। किन्तु हरिनामके लिए ऐसी व्यवस्था नहीं है, क्योंकि नामस्मरण मात्रसे ही पापी व्यक्ति लोग सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्त्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
( भा० ६।२।१८ )

आग जिस प्रकार तृण-राशिको क्षण भरमें जला डालता है, उसी प्रकार जानकर या बिना जानकर उत्तमश्लोक भगवान्‌का नाम कीर्त्तन करने पर उसके द्वारा नामोच्चारण-कारीका पाप-समूह समूल ध्वंस हो जाता है।

भवभय हरणकारी, सकल संकट शमन-कारी, अज्ञानान्धकार विनाशकारी, कलिकलुष हरणकारी, जीवनस्वरूप भगवन्नामका श्रद्धा-भक्तिके साथ उच्चारण-गान-कीर्त्तन इस युगमें सबसे श्रेयस्कर कार्य है। शास्त्रों में बतलाया है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥
( भा० १२।३।५२ )

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने सामूहिक रूपसे "हरिबोल, हरिबोल, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल" की गगनभेदी ध्वनिसे समस्त जगतको हरिनाम मन्दाकिनीमें प्लावित कर दिया था।

भगवन्नाममें ऐसी अपूर्व शक्ति है कि उसके उच्चारण द्वारा सारा वायुमण्डल पवित्र होता है। पंच तत्त्वोंमें विशुद्धता आती है, प्राणियों के अन्तःकरणकी मलिनता दूर हो जाती है, दुष्काल, उत्पात, हिंसाएँ, आसुरी भाव नष्ट हो जाते हैं, अपराध और पापोंकी प्रवृत्ति समूल नष्ट हो जाती है। इसलिये आधुनिक प्रगतिशील देशवासियोंको एकीभूत होकर इसके लिए कटिबद्ध होकर अग्रसर होना चाहिये। इसे कार्यमें लाकर शास्त्र-विचारकोंकी वाणीकी सत्यताको प्रकट करना है। उनकी वाणी असत्य नहीं है, अपरीक्षित नहीं है—यह जगत्वासियोंको बतलाना है। यह वाणी युग-युगान्तरसे की गई अमरसाधनाका परिपुष्ट फलस्वरूप है। यह पूर्णतम अनुभूति-प्राप्त विषय है।

जिसका समय भगवान श्रीकृष्णके गुणगान या श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, वह भाग्य-शाली है, उसका समय सार्थक है। उसको छोड़कर और सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ चली जा रही है। भगवान् भास्कर उदित होकर अपने उदय-अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं। छोटे या बड़े, सुन्दर या असुन्दर, जवान या वृद्ध, राजा या रंक, नेता या साधारण व्यक्ति—सभी ही कालके गालमें जानेवाले हैं। किस क्षण किसकी मृत्यु होगी—कोई कह नहीं सकता या समय निर्द्धारित नहीं है। यह सारी विशाल सम्पत्ति, मान-सम्मान-प्रतिष्ठा, पुत्र-परिजन आदि सभी प्रिय लगनेवाली चीजें यहीं रह जायेंगी। इन पर अभिमान क्यों ?

प्राणियोंकी जीवन-धारणा ही सब कुछ नहीं; क्या वृक्ष सभी जीवित नहीं रहते ? लुहारकी धौंकनी क्या साँस नहीं लेती ? ग्राम के कुत्ते, सूअर आदि क्या खान-पान, मैथुनादि नहीं करते ? जिसके कानोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथा नहीं प्रवेश करती, वह मनुष्य पशु, कुत्ते, ग्रामके शूकर और गदहेसे भी गया-बीता है। जो भगवान्‌की कथा नहीं सुनता, उसके कान साँपके बिलके समान हैं। जो जिह्वा भगवान्‌का गुणानुवाद नहीं करती, वह मेंढ़क की जिह्वा जैसी है। जो सिर भगवानके या सन्तोंके साम्ने झुकता नहीं, वह केवल भार-स्वरूप है। हाथ शवके हाथ तुल्य हैं, जो भगवानकी सेवा नहीं करतीं। जो भगवानकी श्रीमूर्त्ति, साधु-सन्त आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे आँखें मयूर-पंखके चिह्नोंके तुल्य हैं। जिसके नाकने भगवानके श्रीचरणोंमें समर्पित तुलसी या पुष्पका आघ्राण नहीं लिया, वह श्वास लेता हुआ भी शव तुल्य है। जो हृदय भगवन्नामके कीर्त्तनसे द्रवित नहीं होता, वह लोहा जैसे कठिन है।

महापुरुषोंकी जन्मभूमि और भगवानकी लीला-स्थली भारतवर्षके निवासियोंका श्रेयः इसीमें है कि भौतिक जड़ विज्ञानकी माया-मरीचिकामें भ्रमित न होकर, पश्चिमके आपात् रमणीय भयङ्कर-गर्त्तमें न गिरकर, अपना परम कल्याणजनक भगवद्भक्तिका काय-मन-वचनसे आचरण करें। युग युगान्तर इसके साक्षी हैं। जीवोंके सभी प्रकारके दुःखोंका मूल कारण भगवानको भूल जाना ही है। भगवानके सान्मुख्य प्राप्त करने पर ही सभी प्रकारके सुख-ऐश्वर्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

—वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री,
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

# कृपा की कोर कीजै कृष्ण प्यारे

( गताङ्कसे आगे )

कृपा की कोर कीजै कृष्ण-प्यारे ।
बसो कीरत कुँवरि सङ्ग मन हमारे ॥

बनूँ द्रुम-बेलि श्रीवृन्दा-विपिन की,
बनूँ कणिका मैं श्रीयमुना-पुलिन की ।
बनूँ पद-रज मैं गोपी-गोप जन की,
बसूँ व्रज-देश, वर दो हे मुरारे ।।५३।।

हलाहल मीरा ने पान किया था,
सुधारस घोल प्याला भर दिया था ।
कृपालु कर पकड़ अनिजने कर लिया था,
बने गोपाल गिरिधर प्राण-प्यारे ।।५४।।

विदुर घर भोग छिलकोंके लगाये,
सुदामाके चने-चिरवे चिबाये ।
बिहँस इक साग पत्तोपर अघाये,
बिके बिन मोल माधव मुकुट वारे ।।५५।।

सदा सुखमें रटूँ राधा बिहारी,
जिधर हो दृष्टि निरखूँ छबि तुम्हारी ।
मनन मनमें करूँ लीला तुम्हारी,
शरण की अब तुम्हें है लाज, प्यारे ।।५६।।

अनोखी लीला है लाल तुम्हारी,
न आती ध्यान रस-लीला बिहारी ।
न परसो गोपिका-पद-रज-सुखारी,
दया का दान दे दीजै मुरारे ।।५७।।

हृदय का प्यार अब घटने न पावे,
तुम्हारी प्रिय लगन बढ़ती ही जावे ।
तुम्हारा प्रेम रग-रग में समावे,
भले मिट जाय सरबस, हे मुरारे ।।५८।।

सुनी थी द्रौपदी की टेर तुमने,
सुनी थी टेर निज भक्तों की तुमने ।
सुनी थी टेर गज की निज भवन में,
मेरी क्या अनसुनी कर दोगे प्यारे ।।५९।।

नयन में नन्दनन्दन नित निहारूँ,
गिरा गोपाल-श्रीगिरिधर उचारूँ ।
मनोहर मन सदन श्रीपद पखारूँ,
विराजो ध्यान में श्रीश्याम-प्यारे ।।६०।।

अहो ! वृषभानुजा बाँके बिहारी,
दोऊ मिलि बैठिये नयन मँझारी ।
करूँ मैं अर्चना-सेवा तुम्हारी,
रटूँ रसना हे राधा-कृष्ण प्यारे ।।६१।।

दोऊ कीरति-जसोदाजी के प्यारे,
दोऊ वर प्रिया-प्रीतम प्राण-प्यारे ।
दोऊ प्रिय-प्रेम आनन्द-निधि दुलारे ।
मधुप ह्वै मन रमै श्री-पद सहारे ।।६२।।

—श्री रामेश्वरप्रसाद सक्सेना

# आत्मवञ्चना

( साप्ताहिक गौड़ीयसे उद्धृत )

धर्मपथमें आत्मवञ्चना या विप्रलिप्सा एक महान बाधा है। मनोधर्मी जीव स्वभावतः ही आत्मवञ्चित होनेके लिए अत्यन्त लालायित हैं। आत्मवञ्चना नाना प्रकारके वेशमें, बहुत ही चित्त-आकर्षिणी मूर्त्ति धारण कर बद्ध जीवों के निकट उपस्थित होती है। जीव उससे मोहित होकर अपने इहकाल और परकाल का सर्वनाश कर लेते हैं। आत्मवञ्चना 'ही आत्म-विनाशका मूल है। आत्मवञ्चनारूप कपट स्त्रीके मोहक फंदेमें पड़कर हम लोग कई समय अपनी हिंसा और जीवहिंसा करनेके लिए व्यस्त हो पड़ते हैं।

आत्मवंचना अगुरुको या गुरुब्रुवको 'गुरु', अधार्मिकको धार्मिक, मर्कटवेशधारीको साधु ज्ञान कराता है। आत्मवंचक व्यक्ति साधुओंके सत्-परामर्शकी अवज्ञा कर निरन्तर वंचक व्यक्तियोंके दुष्ट-परामर्शका ही अधिक आदर करता है। कई समय हम लोग आत्मवंचित होकर सोचते हैं कि हमने सद्गुरु प्राप्त कर लिया है अथवा यथार्थ वैष्णव-सङ्ग प्राप्त कर लिया है। और कभी-कभी नामापराध कर सोचते हैं कि हमने यथार्थ ही नामका आश्रय ग्रहण किया है।

आत्मवंचित व्यक्ति जड़-प्रतिष्ठाका अधिक आदर किया करते हैं। कई समय हम लोग प्रतिष्ठा पानेकी लालसासे या जनसमाजमें भक्त रूपसे परिचित होनेके लिए साधु लोगोंके निकट जाया करते हैं। जब साधु हमें दण्ड देते हैं, उसे हम लोग कृपाके रूपमें ग्रहण नहीं कर पाते। जब वे हमें प्रतिष्ठा देते हैं, उस समय हमारा हृदय आनन्दसे नाच उठता है और कपटताका आश्रय कर साधुके आँखोंमें धूल झोंककर जिस किसी उपायसे उनके निकट पुनः प्रतिष्ठा संग्रह करनेके लिए व्यस्त हो पड़ते हैं। साधु भी हमारी आत्मवंचित होनेकी प्रवृत्ति देखकर हमें प्रतिष्ठा देकर दूर कर देते हैं। इस प्रकार हम लोग साधुओंकी अकपट कृपा—भगवद्भक्ति प्राप्त करनेसे वंचित रह जाते है।

हम लोग कई समय शुद्धभक्त समाजमें जाते हैं या महोत्सवादिमें भाग लेते हैं। किस लिए? चर्व्य, चूष्य, लेह्य, पेय आदि वस्तुएँ ग्रहण कर जिह्वाको सुख देनेके लिए। साधु लोगोंने हमें हरिकथा सुनानेके लिए बुलाया था। किन्तु हमारे भाग्यमें उस विषयको छोड़ कर और सभी कुछ ही प्राप्त होता है। हम लोग हरिकथा विमुख हैं। पित्तके कारण हमारी जिह्वा इतनी स्वादहीन हो गयी है कि शुद्ध हरिनामरूप मधुर मिश्रीको भी हम लोग कड़ुवी वस्तु समझते हैं। अतएव साधु लोग

सुचतुर हैं, कृष्णभजन-निपुण हैं, परम कारुणिक हैं और दूसरोंके दुःखोंमें दुःखी हैं। चर्व्य-चूष्य-लेह्य-पेयका लोभ दिखाकर उन लोगोंने हरिकथामृत पान करानेके लिए बुलाया था। किन्तु हम लोग साधुकी चतुराई पर भी चतुराई दिखलानेके लिए हरिकथा की छलना कर इन्द्रियतर्पण करनेके लिए आये हैं। कृष्ण-वस्तुमें भोगबुद्धि कर साधुके साथ एक पंक्तिमें बैठकर अधिक परिमाणमें चर्व्य-चूष्य-लेह्य-पेय संग्रह करनेकी लालसासे 'साधु' बन बैठे हैं। धर्मराज्यमें ऐसी सैकड़ों वंचनाएँ नित्य प्रतिदिन होती ही रहती हैं।

मैं अनधिकारी व्यक्ति हूँ, सैकड़ों अनर्थोंका दास हूँ। मैं अधिकारी अनर्थविमुक्त पुरुषके प्रतिष्ठाको आत्मसात् करनेके लिए 'रासपंचाध्याय' श्रवण कर रहा हूँ। इन्द्रियतर्पण परायण होकर मैं जड़ेन्द्रिय तृप्तिके लिए सर्वदा ही लालायित हूँ। मेरे लिए हितकर औषधका त्याग कर काव्य, अलङ्कार आदिका सौन्दर्य उपभोग करनेके लिए, स्त्री-पुरुषकी कामकथा श्रवण करनेकी कामना पूर्ण करनेके लिए अप्राकृत श्रीश्रीराधा-गोविन्दकी लीलाको प्राकृत इन्द्रिय द्वारा श्रवण करनेकी चेष्टा कर आत्मवंचित हो रहा हूँ।

भागवत-व्यवसाय, कीर्त्तन-व्यवसाय आदि के द्वारा नामापराधजात भोगोंका फल भोग कर अपनेको धन्य समझ रहा हूँ। मेरे ही समान कुछ व्यक्तियोंके निकट सम्मान, अर्थादि प्राप्त कर अपने आपको भूल रहा हूँ—वंचित हो रहा हूँ। मेरे पीछे मेरा कोई अनुगत व्यक्ति शुद्धभक्तका सङ्ग प्राप्त कर हरिभजन करनेमें प्रवृत्त हो जायगा—इस डरसे उसे भी शुद्ध भक्तोंका सङ्ग करनेसे मना कर रहा हूँ।

मैंने स्वयं गृहव्रत धर्ममें आसक्त होकर हरिभजनका परित्याग कर दिया है एवं दूसरा व्यक्ति हरिभजन करनेके लिए अग्रसर हो रहा है, यह देखकर मेरे आँखोंमें शूल बींध जाते हैं। मैं असुर मोहनपर वंचनाकारक शास्त्रोंसे मेरे मनोधर्मके उपयुक्त वाक्योंका संग्रह कर प्रबन्ध रचना कर रहा हूँ, भाषण दे रहा हूँ, समय-समय पर वंचित व्यक्तियोंके निकटसे 'वाहवाही' प्राप्त कर और भी अधिक वंचित हो रहा हूँ।

मैं साधुओंके निकट जाकर मेरी भाग्य गणना कर या कभी मेरे व्यवसायका परामर्श पूछकर या कभी स्त्रीकी सेवा-निपुणता और गुण वर्णन कर बहुत चतुराई मान रहा हूँ। साधु लोग भी मेरे ऐसे भावका दर्शन कर मुझे शीघ्र ही शीघ्र दूर हटानेके लिए मुझे प्रचुर सम्मानादि देते हैं। वंचित मैं साधुओंके निगूढ़ तात्पर्यको न समझकर लोकसमाजमें जाकर चिल्ला-चिल्लाकर प्रचार करता हूँ—"अमुक साधु महाराजने मेरा कितना सम्मान किया।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके पास कई ऐसे व्यक्तियोंकी जानेकी बात सुनी जाती है। कोई

अभिमानी व्यक्ति उनके पास पहुँचने पर वे लोग ऐसी प्रतिष्ठादि देकर उन्हें विदा कर देते थे। किन्तु वे सभी वंचित व्यक्ति उसे ही आदर की वस्तु समझकर असली वस्तुका कोई सन्धान नहीं पाते थे, कल्पतरुकी छायामें जाकर विषफल संग्रह कर ले जाते थे। जिस दिन हम लोग निष्कपट होकर निष्किंचन भगवद्भक्तोंका शरण ग्रहण करेंगे, उसी दिन साधु के दण्डको कृपाके रूपमें मस्तक पर धारण कर सकेंगे। उस समय हम लोग निष्कपटरूपसे यह कह सकेंगे—

विरचय मयि दण्डं दीनबन्धो दयांबा,
गतिरिह भवतः न काचिदन्या ममास्ति।
निपततु शतकोटिनिर्भरं वा नवाम्भ-
-स्तदपि किल पयोदःस्तूयते चातकेन॥

उसी दिनसे आत्मवंचना रूपी पिशाची हमारे ऊपर आक्रमण करनेमें समर्थ न होगी।

———

# सन्दर्भ-सार

[ भक्तिसन्दर्भ—३ ]

श्रीमद्भागवतमें मायाका परिचय इस प्रकारसे दिया है—

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथातमः॥
( भा. २।९।३३ )

स्वरूप-तत्त्व ही यथार्थ तत्त्व है। उससे इतर ( अन्य ) तत्त्वका नाम माया है। स्वरूप-तत्त्वसे बाहर जो प्रतीत होता है और स्वरूप-तत्त्वमें जिसकी प्रतीति नहीं है, उसीको ही आत्मतत्त्वका मायावैभव जानना चाहिए। यह बात सहजमें समझी नहीं जा सकती; अतएव इसके दो प्रादेशिक उदाहरण दिये गये हैं। यदि स्वरूपतत्त्वको सूर्य समझा जाय, तो सूर्यसे इतर ( अन्य ) तत्त्व दो प्रकारसे देखा जाता है—एक आभास है, दूसरा तमः या अन्धकार है। सूर्यकी प्रतिच्छबि जलमें प्रतिबिम्बित होकर दूसरे स्थानमें दिखलाई देने पर उसे आभास कहा जाता है। सूर्यका प्रभाव जहाँ देखा नहीं जाता, उसे तमः या अन्धकार कहते हैं। चिज्जगत् भगवत्स्वरूपका किरण-स्वरूप है। उसका सादृश्यावलम्बी आभास-स्वरूप मायावैभव आभासका उदाहरण है। चित्तत्त्वसे सुदूरवर्त्ती अन्धकार या मायावैभव अन्धकारका उदाहरण है। तात्पर्य यही है कि आत्मतत्त्व और मायातत्त्वमें परस्पर दो प्रकार का सम्बन्ध है। पहला सम्बन्ध है—आत्मस्वरूपको छोड़कर इतर स्वरूप और दूसरा

सम्बन्ध है—आत्मस्वरूपसे सुदूरवर्त्ती अनात्म अज्ञानस्वरूप । ये दोनों जीव और माया के स्वरूपको बतलाते हैं ।

श्रीभगवत्-तत्त्वका श्रीमद्भागवतमें इस प्रकारसे वर्णन है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
( भा. २।९।३२ )

सृष्टिके पूर्वमें एकमात्र मैं ही था और कुछ भी नहीं था । असत् अर्थात् आगमापायी अवस्था और सत् अर्थात् सृष्टिमें मेरा जो अन्वय सम्बन्ध है, ये दोनों क्रियाएँ सृष्टिमें देखी जाती हैं उनका भी कारण मैं ही हूँ । जिस प्रकार अग्निका विस्फुलिङ्ग है, सूर्यका किरण है उसी प्रकार सभी भूतोंमें मेरा शक्ति-परिणाम है । मैं विकार प्राप्त नहीं होता, किन्तु मेरी अपरा शक्ति चिन्तामणिके स्वर्ण-प्रसवकी तरह स्वयं अविकृत रहकर इस चराचर जगतकी सृष्टि करती है । सृष्टि होनेके कारण मेरा अद्वयत्व नहीं जाता । सृष्टितत्त्वका पृथकत्व रहनेपर भी मैं सर्वस्वरूप एक ही तत्त्व हूँ । यही मेरी अचिन्त्य शक्तिका भेदाभेद परिचय है । प्रलयके पश्चात् भी एक मैं ही अवशिष्ट रहता हूँ ।

भगवान् सम्यक् प्रकाश-वस्तु हैं, ब्रह्म असम्यक् आविर्भाव मात्र हैं । परमात्मा माया शक्ति-प्रचुर चिच्छक्तिके अंशविशिष्ट ज्ञान हैं । इन त्रिविध आविर्भावयुक्त तत्त्व भक्ति द्वारा ही साक्षात् अनुभूत होता है । उस त्रिविध आविर्भावमय तत्त्वके तीनों रूपोंका अनुभव करनेकी इच्छा रखनेवाले मुनि लोग ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिबलसे ही श्रीगुरुमुखसे वेदान्त-आम्नाय श्रवण कर उसे ग्रहणपूर्वक शुद्ध चित्तमें स्वरूप, जीव और माया नामक शक्तित्रयके आश्रय भगवानका दर्शन करते हैं । ज्ञान और वैराग्य भक्तिके पुत्रस्वरूप हैं । भक्तिके बिना उन दोनोंमें दर्शन करानेकी योग्यता नहीं है । 'मननशील' मुनि कहनेसे ज्ञानी, योगी और भक्तको समझा जाता है । ज्ञानी लोग 'तत्' पदार्थ ईश्वरमें 'त्वं' पदार्थ जीवका दर्शन करते हैं । योगी लोग अन्तर्हृदयमें अन्तर्यामी परमात्माका ध्यान द्वारा दर्शन करते हैं और भक्त लोग बाहर-भीतर प्रेमचक्षु द्वारा भगवान्का माधुर्य आस्वादन करते हैं । इसका प्रमाण है—

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥
( भा. १।२।१२ )

यहाँ 'भक्ति' शब्द द्वारा परावस्थारूपा प्रेमलक्षणा भक्तिको जानना चाहिए । आत्मामें अर्थात् देह और मन द्वारा अनावृत शुद्ध चित्तमें दर्शन करते हैं । परमात्मा शक्तिमत्तत्त्व हैं । भक्ति ज्ञान-वैराग्यकी जननीरूपा और उनके द्वारा सेविता है । अतएव वे मुनिगण पृथक हैं और विशिष्ट-वस्तु भगवानका स्वेच्छापूर्वक दर्शन करते हैं । 'श्रुतगृहीत', 'मुनि' और श्रद्दधान'—इन तीनों पदोंसे उस भक्तिका दुर्लभत्व दिखलाया है । यह भक्ति तब प्राप्त

होती है, जब सद्गुरुके निकट निखिल शास्त्र तात्पर्य-विचार श्रवणपूर्वक अपने भक्ति-साधन की आवश्यकता और सर्वापेक्षा कर्त्तव्यता जाना जाय। और भी आगे कहा गया है—

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥
( भा. २।२।३४ )

भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर समग्र वेदशास्त्रका तीन बार विचार कर भगवान् हरिमें किस प्रकार रति हो सकती है, यह अपनी बुद्धि द्वारा निश्चय किया। इस प्रकार मनन और अभिनिवेश यदि विपरीत बुद्धिका परित्याग करें, तो श्रद्धाविशिष्ट व्यक्ति लोग उपासनाद्वारा उस भक्तिको प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें श्रीबृहदारण्यक श्रुतिका कहना है—

"आत्मा वै अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।" अर्थात् हे मैत्रेयि! परमात्मा ही द्रष्टव्य हैं, श्रोतव्य हैं, मन्तव्य हैं, और निदिध्यासितव्य हैं। यहाँ निदिध्यासन का अर्थ उपासना है और दर्शनसे साक्षात्कार को कहा गया है।

भोगमय प्रापञ्चिक दर्शनमें जड़ाहङ्कारके वशीभूत होकर कोई-कोई ज्ञानको भक्तिका जनक या मूल समझते हैं और कर्मविरक्तिको भक्तिकी जननी समझकर भ्रान्तिमें पतित होते हैं। किन्तु ज्ञान और वैराग्य—इन दोनोंकी भक्ति से ही उत्पत्ति है।

श्रीमद् भगवद्गीतामें कहा गया है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
( गीता. १८।५५ )

अर्थात् उस पराभक्ति द्वारा मेरी जैसी विभूति है और जैसे स्वभावयुक्त मैं हूँ तथा मेरा स्वरूप जैसा है, उस प्रकार तत्त्वतः मुझे जान सकते हैं। उस प्रेमभक्ति द्वारा तत्त्वतः मेरी अनुभूति प्राप्त कर तदनन्तर मुझमें अर्थात् नित्यलीलामें प्रवेश करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र
चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः
पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥
( भा. ११।२।४२ )

जिस प्रकार भोजनकारी व्यक्तिके तुष्टि, उदरभरण और क्षुधा-निवृत्तिरूप तीनों कार्य प्रति ग्रासमें ही एकसङ्ग सम्पन्न होते हैं, उसी प्रकार शरणागत व्यक्तिके भजनकालमें एक साथ ही प्रेमलक्षणा भक्ति, भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और इतरविषयमें वैराग्यरूप तीनों भावोंकी अनुभूति होती है।

शब्दब्रह्मनिष्णात और परब्रह्मनिष्णात व्यक्ति ही सद्गुरु हैं। वेदोंमें श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तिको ही सद्गुरु कहा गया है। निरस्तकुहक वास्तव सत्य श्रीकृष्णसे ब्रह्माजी

के हृदयमें प्रकाशित हुआ । ब्रह्माजीने उसे नारदजीको प्रदान किया। देवर्षि नारदजीने उसे ही श्रीवेदव्यासको प्रदान किया था। श्रीवेदव्यासजीने यही तत्त्व तत्त्ववादाचार्य श्रीआनन्दतीर्थ मध्वाचार्यको प्रदान किया। इन्हींके अठारहवें आधस्तनिक परिचयमें श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने निजजनोंके द्वारा सुरक्षित और प्रकटित धनके रूपमें उसे प्रपञ्चमें आविर्भूत कराया था। प्रपञ्चगत कोई अज्ञानका आवरण उसे परिवर्त्तित या परिमार्जित नहीं कर सकता । यह अवरोहवाद या शिष्य-परम्परा है। जहाँ इसके विपरीत क्रम द्वारा गुरुका निर्णय किया गया है, वहाँ मर्त्यबुद्धि द्वारा श्रीगुरुदेवके प्रति असूया लक्षित होती है। जहाँ गुरुके प्रसादसे ही श्रीकृष्णके प्रसादकी बात है, वहाँ भक्तिलताबीजका रोपण होता है। आरोहवादीके सहायक प्रत्यक्ष-अनुमानादि हैं। आरोहवादी अत्यन्त कष्टसे वास्तव सत्य निरूपण करने जाकर गुरुद्रोहिता कर बैठते हैं। जहाँ कपटता या कुहक वर्त्तमान है, वहाँ गुरुशिष्यका अभिनय अधिरोहवादाश्रित है। वहाँ वास्तवसत्यका सन्धान पाया नहीं जाता। आरोहवादीके सभी इन्द्रिय भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव दोष द्वारा सर्वदा ही परिपूर्ण हैं। श्रीगुरुमुखसे कीर्त्तन श्रवणकारीके वास्तव वस्तुकी धारणामें ये त्रुटियाँ नहीं हैं। विष्णु या वैष्णव जगतमें अवतीर्ण होकर स्निग्धशिष्यको अविमिश्र निरस्तकुहक वास्तव सत्य प्रदान करते हैं। परम कष्ट द्वारा अर्जित-प्राय सत्यप्रतिम उपलब्धि गुरुनामधारी और उनके शिष्यको अधःपातित करती है। वहाँ गुरुशिष्यमें अभक्ति पन्था प्रबल है । 'जाहे भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने'—यही सद्गुरु - पदाश्रय है । अपने भ्रमादि चारों दोषोंके आधार पर भागवत पढ़नेसे कोई फल नहीं होता। श्रीमद्भागवत श्रीवेदान्त-सूत्रका अकृत्रिम भाष्य है।

भागवत विरोधी कृत्रिम शारीरिक भाष्यकारोंने अपने-अपने जड़ाभिनिवेश द्वारा जो सभी साम्प्रदायिक मत सृष्टि कर भगवद् भक्तोंको विपथगामी बनानेका प्रयास किया है, वह कुहक द्वारा आवृत सत्य है और प्राकृत भोगी-त्यागीके उपयोगी मात्र है। वह आत्मा की नित्यवृत्ति नहीं है, अनात्माके मिश्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न है और उनके क्रिया-कलाप प्राकृत स्थूल-सूक्ष्म भूमिकामें अवस्थित हैं। अवैष्णव लोग विष्णुमायाद्वारा प्रतारित होकर भजनीय वस्तु विष्णु और विष्णुभक्तिको प्राकृत समझते हैं। आत्मविदोंमें वैसी दुःसङ्ग करनेकी प्रवृत्ति नहीं है।

वह दुर्लभा भक्ति हरितोषण-तात्पर्यमय स्वाभाविक धर्मद्वारा पाया जाता है । क्योंकि हरितोषण ही धर्मका परम फल है, यह कहने के लिये इस श्लोककी अवतारणा की गई है—

अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥
( भा. १।२।१३ )

भक्तिद्वारा ही आत्मदर्शन संभव है। भक्ति द्वारा उत्पन्न ज्ञान और वैराग्य भक्तिसे स्वतन्त्र होकर अभीष्ट फल प्रदान करनेमें असमर्थ हैं। हे मुनिगण! इसी कारणसे पुरुषगण वर्णाश्रम-विभाग अवलम्बन कर वर्णाश्रममें अवस्थित होकर यथाविहित जो धर्माचरण करते हैं, हरिका प्रीति-विधान ही उसका मुख्य फल है।

'सुष्ठु रूपसे अनुष्ठित' कहनेसे बहुप्रयास द्वारा अनिन्दित रूपसे उपार्जित को जानना चाहिये। इसके द्वारा स्वर्गादि भोगमय राज्य-प्राप्तिके लिए धर्मका आचरण करना अत्यन्त अयुक्त कार्य है—यह अर्थ निश्चित होता है। स्वर्गादि भोग नश्वर फल हैं और अनात्म-वस्तुके भोगमात्र हैं। नित्य कृष्णदास जीव अपने-अपने स्वभावके कारण माया द्वारा ग्रस्त होकर सेवा करनेके लिए अयोग्य हो पड़ते हैं एवं स्थूल-सूक्ष्म दोनों आवरणोंको आत्म-प्रतीतिके रूपमें ग्रहण करते हैं। ऐसी अज्ञानमय चेष्टाको नश्वर उपलब्धि या हरिविमुखता करते हैं। जिस प्रकार देहकी पुष्टिके लिये खाद्य-द्रव्य ग्रहण करने पर पेटमें स्थित कृमियाँ उन द्रव्यों पर पुष्ट होती हैं और देहकी पुष्टि नहीं होती, उसी प्रकार नश्वर स्वर्गादि सुख नित्य आत्माकी स्वाभाविक वृत्तिको जगानेके बदले भोगकी शृङ्खलामें जीवोंको और भी आबद्ध कर देते हैं। आत्मसुखके क्रमशः उदय होने पर नश्वर स्वर्गादि सुख मलिन और अग्राह्य हो पड़ते हैं। अधिरोहवाद के माध्यमसे मायाबद्ध जीवद्वारा अत्यन्त कठिनाईसे प्राप्त नश्वर सुख-भोगको आत्मविद् व्यक्ति अत्यन्त तुच्छ जानते हैं।

श्रवणादि रुचि-लक्षणा भक्ति ही यदि हरिसन्तोष-उत्पादक धर्मका मुख्य फल है, तो साक्षात् रूपसे श्रवणादिरूपा भक्ति ही कर्त्तव्य है, इस श्लोकमें यह बात बतलायी गई है—

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥
( भा. १।२।१४ )

श्रवणादि रुचिरहित भक्तिहीन धर्म केवल श्रम होनेके कारण धर्मादि-आग्रहशून्य होकर एकाग्रमन द्वारा भक्तवत्सल भगवानके नाम-रूप-गुण-लीलादिका श्रवण, कीर्त्तन, ध्यान और पूजादि नित्य करना चाहिए।

'एक' शब्द द्वारा कर्म, ज्ञान योग, वैराग्य आदिके प्रति आग्रहहीनताको लक्ष्य किया गया है। भगवानके नाम-रूप-गुण-लीलादि 'श्रवण' शब्द द्वारा लक्षित किये गये हैं। 'कीर्त्तन' शब्द द्वारा यही बात जाननी चाहिये।

पूर्वोक्त श्लोकोंमें भक्तिकी आखिरी भूमिका तक सुख-साध्यत्व और सुख-भावत्व कहनेके लिये धर्मार्थकाम आदिकी क्लेश-अपेक्षा रहित होकर युक्तिमात्र अवलम्बनपूर्वक हरिकथा-रुचिरूपा प्रथम भूमिका प्रकटित कराकर उनके गुण स्मरण करा रहे हैं—

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम्॥
( भा. १।२।१५ )

संयतचित्त विवेकी व्यक्ति लोग जिस श्रीहरिकी चिन्तारूप तीक्ष्ण तलवार द्वारा देहके प्रति अहङ्कार बन्धनरूप कर्मको काट डालते हैं, ऐसे श्रीहरिकी कथामें कौन प्रीति न न करेगा ? अर्थात् सभी व्यक्तिके लिये कर्त्तव्य है। 'कोविद' कहनेसे विवेकी और 'युक्त' कहने से संयतचित्तको जानना चाहिए । हरिका सर्वक्षण ध्यान या चिन्ता ही खड्ग स्वरूप है। नाना देहोंके प्रति अहङ्कार रूपी ग्रन्थि-बन्धन ही कर्म है । ऐसे खड्ग द्वारा उस कर्मका खण्डन करते हैं । जिस कथा द्वारा कर्मवादमें वर्त्तमान परम दुःखरूप अज्ञानसे उद्धार प्राप्त होता है, ऐसी कथामें कौन प्रीति न करेगा ? अर्थात् मूर्ख आत्मघाती व्यक्ति ही ऐसा करेगा। जीव अपने कृष्णदास्यको भूलकर अपनेको भोग करनेवाला समझता है और उस प्रवृत्ति द्वारा कर्ममें प्रवृत्त होता है। वही कर्म ग्रन्थि-रूप है अर्थात् कर्मकर्त्ताको छोड़ना नहीं चाहता, उसे आबद्ध रखता है। जीव आत्मधर्मसे सर्वदा ही विपथगामी होकर अपने-अपने फलभोगमें बन्ध जाते हैं।

हतभाग्य व्यक्तियोंकी ऐसी हरिकथामें भी रुचि नहीं होती; इसलिये उसके पानेके लिए सरल उपाय कह रहे हैं । हरिकथामें रुचिकी बात आरम्भ कर "शुश्रूषोः" श्लोकसे लेकर "प्रसन्नमनसः"तक—इन पाँचों श्लोकोंमें नैष्ठिकी भक्ति तक बतलाया है—

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात्॥
( भा. १।२।१६ )

हे विप्रगण ! भगवद् धामकी सेवा द्वारा दैवात् सुकृतिके कारण महत्कृपाजनित महान् व्यक्तिकी सेवा होती है। ऐसे महान् व्यक्तिकी सेवा-फलसे जातश्रद्ध पुरुष सद्गुरुका चरणा-श्रय ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं । सद्गुरुके निकट श्रवण करने पर ही हरिकथामें रुचि होती है।

निरहङ्कार मुनि लोग गुरूपदेशद्वारा तत्त्व और सारासार-विवेक जानकर सभी विषयोंका परित्याग कर महान् व्यक्तियोंके सङ्गद्वारा उन सब बातोंको दृढ़तासे जाननेके लिये पृथिवीके सभी पुण्यतीर्थोंमें भ्रमण करते हैं। श्रीधरस्वामीपादके टीकानुसार पुण्यतीर्थोंमें भ्रमण करते समय बिना किसी चेष्टाके प्राप्त महत्सेवाद्वारा हरिकथामें रुचि होती है। कोई कोई दूसरे कार्यसे भ्रमण करने पर भी तीर्थ-भ्रमण करनेवाले या तीर्थ-वास करनेवाले साधुओंका दर्शन, स्पर्शन, संभाषणादियुक्त सेवा स्वतः ही हो जाती है। उसके प्रभावसे महान् व्यक्तियोंके आचरणमें रुचि या श्रद्धा होती है। साधुओंके स्वाभाविक परस्पर हरिकथामें श्रवणकारीकी उत्सुकता होने पर या कानके भीतर प्रवेश करने पर उसकी हरिकथामें रुचि होती है। महान् वैष्णवोंके मुखसे श्रवण करने पर अत्यन्त थोड़ेसे समयमें ही वह कार्यकारी

होती है। इसलिए भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूतिसे कह रहे हैं—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा-रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥
( भा. ३।२५।२५ )

साधुओंके प्रकृष्ट सङ्गद्वारा कृष्णेतर-अनर्थ-नाशकारी हरिकथाका श्रवण होता है। उसके द्वारा निष्ठाका उदय होकर भगवान्‌की महिमा का ज्ञान होता है। रुचि उत्पन्न होनेके कारण हरिकथा द्वारा हृदय और कर्णको बड़ा अलौकिक आनन्द मिलता है। साधुसङ्गके पहले श्रवणक्रिया होती है, उससे श्रद्धा होकर सङ्ग होता है। ऐसी हृत्कर्णरसायनी कथाका प्रीतिके साथ आस्वादन करते-करते आसक्ति, रति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति क्रमशः उदित होते हैं। आगे कहते हैं—

शृन्वतः स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः।
हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम्॥
( भा. १।२।१७ )

उसके पश्चात् हरिकथामें रुचि होने पर साधुओंके सुहृत् ( परम बन्धु ), हरिकथाके श्रवण और कीर्त्तनकारीके सुकृतिप्रदायक श्रीकृष्ण अपने कथा श्रवणकारीके हृदयमें अवस्थित होकर उसके हृदयकी असत्-वासना नष्ट कर देते हैं। अर्थात् जीवके द्वारा हरिकथा सेवन करने पर क्रमशः श्रवणद्वारा कीर्त्तन, कीर्त्तन द्वारा अनर्थ-निवृत्ति एवं अनर्थ-निवृत्ति के पश्चात् भगवान् एकमात्र स्मरणीय-वस्तुके रूपमें उदित हो जाते हैं।

—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

# श्रीश्रीकृष्ण-जयन्ती

'श्रीश्रीकृष्ण-जयन्ती' कहनेसे श्रीकृष्ण भगवान्‌के पवित्र आविर्भाव-पर्वका ही निर्देश किया गया है। आजकल भगवानके साथ बराबरी करनेके लिए तथाकथित उच्च कोटिके विद्वान् लोग और नेता लोग हिरण्यकशिपु, रावण, कंस आदिकी तरह एकमात्र भगवानके लिये ही व्यवहार करने योग्य वैशिष्ट्ययुक्त शब्दोंको अपने लिये प्रयोग करनेका दंभ प्रकाश कर रहे हैं। अपनी जन्म-तिथिके उत्सवादिकी व्यवस्था कर उसके लिये 'जयन्ती' नाम देते हैं। उनके मृत्युके पश्चात् भी उनके दलभुक्त व्यक्ति उसका पालन करें, उसके लिये भी चेष्टा करते हैं। इस तरह भगवानकी विशेष सम्पत्ति 'जयन्ती' को मनुष्य लोग लूटनेका प्रयास कर

रहे हैं। यह घोर भगवद्-विरोधिताका परिचय मात्र है। "भगवानके लिये पृथक्रूपमें कुछ रखनेकी आवश्यकता नहीं है, सब कुछ हम ही भोग करेंगे"—यह 'असुरे लुटिया खाय कृष्णेर संसार' का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ऐसे भगवद्पराधसे प्रत्येक सद्बुद्धियुक्त व्यक्तिको सावधान रहना चाहिए। महान् व्यक्तियोंकी स्मृतिरक्षाके लिये स्मरणोत्सव आदि पालनीय हैं। किन्तु उसके लिये भगवान्की मर्यादाका उल्लंघन करना अनुचित है।

अभी भी दक्षिण में 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी' के लिये ही 'जयन्ती' शब्दका प्रयोग होता है। हमारा दुर्भाग्य क्रमशः बढ़ता जा रहा है। कुछ दिन पश्चात् प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति ही अपनी जन्म-तिथिके लिये 'जयन्ती' शब्दका प्रयोग करनेकी चेष्टा करेगा। हे देवि महामाये! तुम कितने प्रकारसे ही भगवद्-विमुख जीवोंको अपने फंदेमें फँसा रही हो, उसकी सीमा नहीं हैं। उन्हें और भी विमुख कर विमुखताका कठोर दण्ड देकर उनकी उन्मुखताके लिये चेष्टा करती हो। यही तुम्हारा भगवान द्वारा निर्दिष्ट कार्य है। तुम जीवको कभी स्वर्गमें उठाती हो, यह दिखलानेके लिये कि वहाँ नित्य सुख नहीं है। "क्षीणे पुण्य मर्त्यलोकं विशन्ति····· गतागतं कामकामा लभन्ते।" अर्थात् पुण्यकर्म द्वारा स्वर्गभोग प्राप्त होने पर वहाँसे पुनः इस भूलोकमें आना पड़ता है। दुष्क्रिया परायण जीवको नरक भोग कराकर शोधन करती हो। सारे ब्रह्माण्डमें तुम्हारा अधिकार है। हे देवि! मुझे उपयुक्त दण्ड देकर शीघ्र ही भागवत और भगवत्-सेवामें नियुक्त होनेका सुयोग प्रदान करो। देवि! मेरी रक्षा करो, जिससे मैं विपथगामी होकर भगवानकी अमृतमयी सेवासे वंचित न रह जाऊँ।

श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावकी वर्णना करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।
यर्ह्यजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षं ग्रहतारकम्॥
(प्रथम श्लोक)

अजन अर्थात् जन्मरहित भगवानके आविर्भावके उपयुक्त सर्वशुभलक्षणयुक्त, परम शोभायमान कालमें नक्षत्रपुञ्जविशेष (रोहिणी या जयन्ती) और शान्तिप्रदानकारी नक्षत्र-ग्रह-ताराओंका समावेश हुआ। यहाँ अजन-जन्म' शब्दका अर्थ विपरीत जान पड़ता है। इसका समाधान गीतामें किया गया है—

अजो पि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।६-८)

श्रीपाद श्रीधरस्वामीने प्रथम श्लोककी सुबोधिनी टीकामें यह प्रश्न उठाकर इसका

इस प्रकारसे दिया है—"ननु अनादेः तव कुतो जन्म ? अविनाशिनश्च तव कथं पुनः पुनः जन्म येन 'बहूनि मे व्यतीतानि' ( गीता ४।५ ) इत्युक्ते। एवं ईश्वरस्य तव पुण्यपापविहीनस्य कथं जीववत् जन्म ? इत्यतः आह—सत्यमेव, तथापि अहं अजः जन्मशून्यः अपि सन् अव्ययात्मा तथा अनश्वर स्वभावः अपि सन् भूतानां ब्रह्मादि स्तम्भपर्यन्तानां ईश्वरः। कर्मपारतन्त्र्यरहितः अपि सन् ( ननु तत्रापि षोड़शकलात्मक लिङ्गदेहशून्यस्य च तव कुतः जन्म इत्यतः उक्तं ) स्वां शुद्धसत्त्वात्मिकां प्रकृतिं अधिष्ठाय स्वीकृत आत्ममायया स्वमायया सम्भवामि विशुद्धोर्जित सत्त्वमूर्त्या स्वेच्छया अवतरामि इत्यर्थः।"

अर्थात् "अच्छा, आप तो अनादि हैं; तब आपका जन्म किस प्रकार हुआ ? अविनाशी हैं; आपका किस प्रकार पुनः पुनः जन्म होता है ? क्योंकि आपने कहा है—'मेरे बहुत जन्म हो गये हैं।' और पापपुण्यरहित आपका जीव की तरह किस प्रकार जन्म हुआ ?' उत्तरमें भगवान् कह रहे हैं—'यह बात सत्य है ; किन्तु मैं जन्मशून्य होकर भी और अनश्वर स्वभावयुक्त होकर भी ब्रह्मादिस्तम्भ तक सभी भूतोंका कर्मपारतन्त्र्यरहित ईश्वर होकर भी ( फिर भी प्रश्न—अच्छा, तब भी षोड़शकलात्मक लिङ्गदेहशून्य आपका जन्म कैसे ? उसी का उत्तर दे रहे है )—स्वीय शुद्धसत्त्वात्मिका प्रकृति स्वीकारपूर्वक आत्ममाया अर्थात् विशुद्ध निर्मल सत्त्वमूर्त्तिके रूपमें स्वेच्छा से अवतीर्ण होता हूँ।"

प्रसिद्ध टीकाकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने इसकी व्याख्याको और भी स्पष्ट किया है—"आप जो देवमनुष्यतिर्यगादि योनियोंमें जन्म स्वीकार करते हैं, वह आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जीव भी वस्तुतः अज होकर भी स्थूल देहके नष्ट होनेके पश्चात् जन्म ग्रहण करते हैं।' उनके उत्तरमें भगवान् कह रहे हैं—'मैं अनश्वरशरीर हूँ । जीव स्वदेहभिन्न स्वस्वरूपमें जन्मरहित है। अविद्या द्वारा उत्पन्न देहसम्बन्ध ही उसकी जन्म-प्राप्ति है। किन्तु ईश्वर होनेके कारण स्वदेहाभिन्न मेरा अजत्व और जन्मवत्त्व—दोनों ही स्वरूपसिद्ध हैं। ये दो होनेके कारण विचित्र और अवितर्क्य हैं। अतएव पुण्यपापादियुक्त जीवका सदसद् योनियोंमें जन्मकी तरह मेरे जन्मकी संभावना नहीं है । स्वीय प्रकृति स्वीकार कर—यहाँ यदि प्रकृति शब्द द्वारा बहिरङ्गा माया शक्तिको समझा जाय, तो उसके अधिष्ठाता परमेश्वर उसके द्वारा जगद्रूप होते हैं । इसमें किसी विशेषत्वकी उपलब्धि नहीं होती । स्वरूप और स्वभाव—अभिधानोक्त इस अर्थ द्वारा प्रकृति कहनेसे स्वरूपको ही कहा गया है। कूर्मपुराणमें कहा गया है—

"देहदेही विभागश्च नेश्वरे विद्यते क्वचित्"।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

"देह-देहीर नाम-नामीर कृष्णे नाहि भेद ।
जीवेर धर्म-नाम-देह-स्वरूपे विभेद ॥"
( चै. च. म. १३२ )

इस पद्य द्वारा हम यह जानते हैं कि जिस प्रकार जीवका देह उसके देहीसे स्वतन्त्र है, श्रीभगवानके लिये वैसा नहीं होता। जीव स्वरूपसे अज होने पर भी उसका देह अविनाशी न होनेके कारण वह पुनः पुनः जन्म-मृत्यु वरण करता है। ईश्वरका देह अविनश्वर होनेके कारण वह नित्य है। अच्छा, यदि ऐसा हो, तो इसके दूसरे श्लोकमें (४।७) भगवानने क्यों कहा कि 'आत्मानं सृजाम्यहम्' ? यहाँ श्रील चक्रवर्त्ती ठाकुरने कहा है—'सृजामि'—सृष्टि करनेके अर्थमें। नित्यसिद्ध देहको सृष्ट देहकी तरह प्रदर्शन करता हूँ। अर्थात् असुर मोहिनी माया द्वारा रचित पदार्थकी तरह दिखलाया करता हूँ।

भगवान् अज अर्थात् जन्मरहित हैं। वे स्वेच्छापूर्वक अपनी चिच्छक्तिका आश्रय लेकर अपने नित्य शरीरको प्रकट करते हैं। अतएव श्रीमद्भागवतके 'अजनजन्म'—इस कथनमें कोई विरोधकी बात नहीं है। जन्म-कालके वर्णनमें कहा गया है कि उस समय सभी दिशाएँ निर्मल थीं, आकाश मेघरहित था, नगर-ग्राम-व्रज समूह मंगल लक्षण समूह द्वारा परिशोभित थे, वन समूह पक्षियोंके मधुर कलरव और भ्रमरोंके गुञ्जारसे मुखरित थे, नदियोंके जल निर्मल थे, सरोवर पद्मसमूहों द्वारा परिशोभित थे, फूलोंकी सुगन्धिसे मनोरम सुखस्पर्श वायु संचालित था, साधुओंका मन सुप्रसन्न था, और रात्रिमें अन्धकारका नाश करते हुए चन्द्र उदित हुए थे। भगवानके शुभाविर्भाव कालमें स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, किन्नर-गन्धर्व आदि गान करने लगे, सिद्ध-चारणगण स्तुति पाठ करने लगे, अप्सराएँ और विद्याधरियाँ नाचने लगीं, स्वर्गसे देवता और मुनि लोग आनन्दके साथ पुष्प-वर्षा करने लगे और मेघ मन्द-मन्द गर्जन करने लगे। ऐसे समयमें देवरूपिणी श्रीदेवकीसे सर्वान्तर्यामी भगवान् पूर्व दिशामें चन्द्रकी तरह सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए प्रकट हुए। भगवदाविर्भाव-कालमें कोई भी दुर्योग नहीं हुआ। उन कमलनयन, चतुर्भुज, शंखचक्रगदापद्मधर, श्रीवत्स-लाञ्छन चिह्नयुक्त, गलेमें कौस्तुभ-मणि अलङ्कृत, पीताम्बरधारी, गाढ़ मेघवर्णयुक्त, महामूल्य वैदूर्यमणियुक्त किरीट, कुण्डल-आभाद्वारा शोभित सहस्र-सहस्र घुंघराले केशयुक्त, उन्नत दीप्तिशाली काञ्ची-दाम-कङ्कणादि शोभित अद्भुत बालकको देखकर आनकदुन्दुभि वसुदेव अत्यन्त खिले हुए नेत्रोंसे भगवान् श्रीहरिको अपने पुत्र रूपसे दर्शन करने लगे। उन्होंने कृष्णावतार महोत्सवके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको मन ही मन दस हजार दुग्धवती गौ प्रदान की। इसके पश्चात् उन्होंने झुके हुए मस्तकसे और हाथ जोड़कर जिन परमपुरुष भगवान्ने अपनी अलौकिक दीप्तिद्वारा उस सूतिकागृहको प्रकाश-

मय कर दिया था, प्रसन्न मनसे उनका स्तव करने लगे। इसके पश्चात् महापुरुष-लक्षणयुक्त पुत्रका दर्शन कर कंस-भय भीता देवकी उनका स्तव करने लगीं। देवकी इसके पश्चात् उनसे अपना यह अलौकिकरूप संवरण करनेके लिये बारम्बार प्रार्थना करने लगीं, जिससे कि कंस यह न जान पावें कि उनके गर्भसे भगवान् का जन्म हुआ है। भगवान्ने तब उन दोनोंको बतलाया कि पूर्वजन्ममें वे लोग पृश्निगर्भ अवतारमें उनके पिता-माता सुतपा और पृश्नि थे तथा वामन अवतारमें कश्यप और अदिति थे। पूर्वजन्मकी बात स्मरण करानेके लिये ही उन्होंने यह चतुर्भुज मूर्ति दिखलाया। ऐसा बतलाकर वे तुरन्त ही प्राकृत शिशुका रूप धारण कर लिये।

इसके पश्चात् शौरि वसुदेवजीने भगवानके आदेशसे जब बालकको गोदमें लेकर सूतिका-गृहसे बाहर निकलनेकी इच्छा की, उसी समय ही भगवानकी आत्मशक्ति-रूपिणी जन्मरहिता योगमायाने नन्दभार्या यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। योगमायाके प्रभावसे द्वाररक्षक प्रहरी लोग और नगरवासी लोग अचेतन होकर सो गये। ज्यों ही वसुदेव दरवाजेके निकट पहुँचे, त्यों ही लोहेके कीलयुक्त और शृङ्खला द्वारा आबद्ध दुष्पार दरवाजा अपने आप खुल गया। उस समय भयङ्कर मेघ-गर्जन, झंझावात और प्रबल वेगसे वर्षा होने लगी। भगवान शेषरूपी अनन्तदेव अपने हजारों फणों को फैलाकर जलको निवारण करते हुए अनुगमन करने लगे। घोर वर्षासे यमुना नदी के जल-प्रवाहमें फेन और भयानक आवर्त्त दीखने लगे। जिस प्रकार समुद्रने रामचन्द्रजी को पथ प्रदान किया था, उसी प्रकार यमुनाजीने भी वसुदेव महाराजको पथ प्रदान किया।

व्रजमें वसुदेव महाराज उपस्थित हुए। श्रीनन्दगृहमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि सभी गोप लोग निद्रित हुए हैं। तब वे यशोदा-जीकी शय्यामें कृष्णको सुला कर यशोदाजीकी नव-प्रसूता कन्याको लेकर पुनः कारागारमें लौटे। उसके पश्चात् वसुदेवजी उस कन्याको देवकीकी शय्यामें सुलाकर पहलेकी तरह पाँवों में बेड़ियाँ डालकर बैठ गये। कारागार और पुर द्वार सब स्वतः बन्द हो गये। इधर यशोदा जी प्रसव परिश्रान्ता होकर योगमाया द्वारा स्मृतिशक्तिशून्या होनेके कारण यह न जान सकीं कि उन्हें पुत्र हुआ है या पुत्री। उनको केवलमात्र सन्तान होनेका भान हुआ।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार अवतार स्वीकारपूर्वक देवकीके गर्भमें आवि-र्भूत हुए? पहले उन्होंने चतुर्भुजमूर्त्ति प्रकट की थी। इसके पश्चात् भगवान्ने अपना विक्रम प्रकाश कर एक प्राकृत शिशुका रूप धारण किया था। कृष्ण और विष्णु-तत्त्वमें परस्पर क्या सम्बन्ध है? श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥
( भा. १।३।२८ )

श्रीकृष्ण ही स्वयं अवतारी और स्वयं भगवान् हैं। और सभी अवतार उनके कलाविशेष या अंश हैं। असुरोंके अत्याचारसे पृथ्वी पीड़ित होने पर, ये सभी अवतार अवतीर्ण होकर पृथ्वीका भार-हरण करते हैं। कृष्ण अवतारी-तत्त्व हैं, केवल अवतारमात्र नहीं हैं, इसका प्रमाण ब्रह्म-मोहन लीलामें पाया जाता है। ब्रह्मा वृन्दावनमें गोवत्स और गोपबालक हरण कर बड़े भ्रममें पड़ गये। उस समय उन्हें कृष्ण-तत्त्वका ज्ञान हुआ। उनके स्तव में इस बातका विस्तृत विवरण है। उसके अन्तर्गत एक श्लोकमें पाया जाता है—

"नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥
( भा. १०।१४।१४ )

( वस्तुतः आपसे ही मेरी उत्पत्ति है ) आप क्या नारायण नहीं हैं? आप ही नारायण हैं, क्योंकि आप सब देहधारियोंके ( जीवोंके ) आत्मस्वरूप हैं। अर्थात् नार कहनेसे जीव-समूह और अयण कहनेसे आश्रय। ऐसे जो हैं, वे ही नारायण हैं। आप वे ही नारायण हैं। हे अधीश, आप अखिल लोकसाक्षी हैं। अर्थात् लोकसमूहको जो जानते हैं, वे ही नारायण हैं। अतएव त्रिकालज्ञ आप ही नारायण हैं। नरसे उत्पन्न चौबीस तत्त्व, उससे उत्पन्न जल जिनका अयन या आश्रय है, वे ही नारायण हैं। वे नारायण आपके अङ्ग अर्थात् विलासमूर्त्ति हैं। आपका परिच्छिन्नत्व सत्य नहीं है। परन्तु वह आपकी माया है अर्थात् अचिन्त्य-शक्तिका परिचय है। या दूसरे शब्दोंमें अपरिच्छिन्न होकर भी परिच्छिन्नकी तरह देखा जाना उनके अचिन्त्य शक्तिका परिचय है, जो परम सत्य है। विराट रूपकी तरह आपका नारायणरूप मायिक नहीं है। श्रीचैतन्यचरितामृत, आदिलीला, द्वितीय परिच्छेदमें यह विषय भली प्रकारसे वर्णित है—

अतएव ब्रह्म-वाक्ये परव्योम-नारायण ।
तेहों कृष्णेर प्रकाश—एइ तत्त्व-विवरण ॥५८॥

( क्रमशः )

—श्रीहरिपद विद्यारत्न भक्तिशास्त्री

# प्रचार-प्रसङ्ग

## श्रीश्रीझूलनयात्रा महोत्सव

### श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें

अन्यान्य वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी गत ६ भाद्र, २३ अगस्त, शनिवारसे लेकर १० भाद्र, २७ अगस्त, बुधवार पूर्णिमा तक श्रीराधाविनोद बिहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। सभा मण्डप, हिंडोला और श्रीमन्दिर नाना प्रकारकी आलोक-मालाओं, रङ्ग-बिरंगे वस्त्रों, केलेके वृक्ष और आम्र-पल्लवोंसे सुसज्जित किये गये थे। नित्य नई-नई झाँकियाँ, विराट हरिसंकीर्त्तन, प्रवचन आदि इस महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे। समागत असंख्य व्यक्तियोंके निकट प्रचुर मात्रामें हरिकथा-प्रचार किया गया।

### श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें

समितिके मूल-मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह महोत्सव विराट रूपसे सम्पन्न हुआ है। मठके नवनिर्मित नाट्य-प्राङ्गणमें तथा मन्दिरमें श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीके झूलोंकी सुन्दर-सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की गई थीं। ये सभी झाँकियाँ विद्युतके द्वारा चालित होकर बहुत ही आकर्षक और मनोहर लगती थीं। प्रतिदिन शामको दर्शकोंकी अपार भीड़ झूलनकी झाँकियोंका दर्शन करने आती थी। विभिन्न वक्ता महोदय प्रतिदिन अमृतमयी हरिकथा द्वारा श्रोताओंको आनन्दित करते थे।

### श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें

समितिके आसाम-प्रदेशस्थ केन्द्र श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ में प्रति वर्ष ही श्रीश्रीझूलनयात्राके उपलक्ष्यमें छः दिनों तक श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीका झूलन यात्रा-महोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया जाता है। इस वर्ष भी यह उत्सव पहले-पहले वर्षोंकी भाँति बड़े उत्साहके साथ मनाया गया है। इस अवसर में दोनों समय (सवेरे तथा शामको) श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन, श्रीमद्भागवत-पाठ, धर्म-सभा आदिके द्वारा श्रीश्री चैतन्य-महाप्रभु द्वारा प्रचारित शुद्धा भक्ति-वाणीका विपुल रूपसे प्रचार किया गया है। श्रीराधाविनोदबिहारीजी अपनी प्रियतमा श्रीराधाजीके साथ हिन्दोलन-झूलामें झूलते हुए दर्शकोंके नयनों तथा मनको आकर्षण कर लेते थे।

इस उत्सवमें श्रीरमापति दासाधिकारी, भक्त-सुहृद्, श्रीपाद विश्वरूपदास ब्रह्मचारी (श्रीविश्वनाथ चौधरी, हेड-मास्टर, विद्यापुर हाईस्कूल ), श्रीपाद गजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी आदि सुयोग्य वक्ताओंने सभापतिका आसन अलंकृत किया। स्थानीय बहुतसे गण्यमान्य सज्जन तथा महोदयगण इस उत्सवमें अतिथिके स्थान अलंकृत किये। वर्त्तमान युगमें भक्तिकी आवश्यकता, सनातन धर्मका स्वरूप, श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुकी अभूतपूर्व शिक्षा और सिद्धान्त तथा उनका जगतके जीवोंको अमूल्य-दान, श्रीमद्भागवत और श्रीमद्गीताका रहस्य, श्रीकृष्णका सर्वेश्वरेश्वरत्व, धार्मिक जीवनकी आवश्यकता आदि विषयों पर तत्त्वपूर्ण और शास्त्र युक्तिपूर्ण आलोचना की गई। प्रतिदिन इस उत्सवमें निमन्त्रित-अनिमन्त्रित सभी व्यक्तियोंको श्रीमहाप्रसाद वितरण किया गया। आखिरी दिन उत्सव-समाप्तिके पर्व पर आगत प्रत्येक व्यक्तिको सवेरे ८ बजेसे शामको ८ बजे तक श्रीमहाप्रसाद प्रचुर रूपमें वितरण किया गया। इस उत्सवमें श्रीपाद गजेन्द्र-मोचन ब्रह्मचारीकी सेवा-चेष्टा और सेवा-निपुणता प्रशंसनीय रही।

अन्यान्य शाखा-मठोंमें भी यह उत्सव मनाया गया।

## श्रीबलदेव प्रभुका आविर्भाव

गत १० भाद्र, २७ अगस्तको बुधवारके दिन, पूर्णिमा-तिथिपर श्रीकृष्ण भगवानके बड़े भाई श्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके मूल मठ तथा शाखा मठोंमें उपवास, कीर्त्तन, भाषण, प्रवचन, आदिके माध्यमसे सुष्ठु रूपसे पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवकी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें विराट धर्मसभाका आयोजन किया गया, जिसमें श्रीबलदेव-तत्त्वकी विशद रूपसे आलोचना की गई।

## श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत और श्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १८ भाद्र, ४ सितम्बर, बृहस्पतिवारको समितिके मूल मठ और सभी शाखा मठोंमें श्रीकृष्ण भगवानकी जन्माष्टमीका व्रतोपवास पालित हुआ है। दूसरे दिन १९ भाद्र, ५ सितम्बर, शुक्रवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ मनाया गया है।

## श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें

यहाँ यह उत्सव प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी विराट समारोह और विशेष उत्साहके साथ मनाया गया है।

इस अवसर पर श्रीकृष्णकी जन्मलीला प्रदर्शनीका बड़ा सुन्दर आयोजन किया गया था। यह प्रदर्शनी १९ सितम्बर, शुक्रवार, श्रीश्रीराधाष्टमी तिथि तक खुली रही। प्रतिदिन हजारों दर्शक और श्रोता लोग आया करते थे। प्रदर्शनीमें कृष्णकी विविध

प्रकारकी मनोहर लीलाओंको सुन्दर ढङ्गसे दिखलाया गया। ये सभी लीलाएँ विद्युत-शक्ति द्वारा परिचालित होकर दर्शकोंके चित्तको आकृष्ट कर लेती थीं। इस अवसर पर विभिन्न त्रिदण्डिपादोंके तथा ब्रह्मचारियोंके भाषण-प्रवचन हुए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन सबेरेसे लेकर रातके १२ बजे तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण हुआ। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सव पर हजारों व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

## श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीधाम मथुरामें

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीजन्माष्टमीका व्रतोपवास और नन्दोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाये गये। श्रीमन्दिर, नाट्यमन्दिर, बाहरी प्राङ्गण आदिक आम्र-पल्लव, कदली-वृक्ष, रङ्ग-बिरंगे तोरण और वस्त्रों तथा आलोकमालाओं द्वारा सजाये गये थे। सबेरे ५ बजेसे लेकर रातके १२ बजे तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण और हरिकीर्त्तनादि हुए। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज, श्रीपाद कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद रासबिहारी व्रजवासी, श्रीपाद कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीपाद पीताम्बर पन्त आदिके उपदेशपूर्ण भाषण हुए। सबसे अन्तमें त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रीकृष्ण-जन्मप्रसङ्ग पर बड़ा ही मार्मिक प्रकाश डाला। मध्यरात्रिमें आरति सम्पन्न होने पर उपस्थित सभी व्यक्तियोंको महा-प्रसाद वितरण किया गया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर उपस्थित भक्तवृन्दोंको सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया।

## श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रतोत्सव

गत ९ आश्विन, १९ सितम्बर शुक्रवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीराधाष्टमी का व्रत-महोत्सव कीर्त्तन, पाठ, भाषण और प्रवचनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके लिए यह तिथि परम आदरणीय है। श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीमती राधिकाजीके आनुगत्यकी प्रधानता है। बिना श्रीमतीजीकी कृपासे श्रीकृष्णकी कृपा अत्यन्त दुर्लभ है, यह अटल सिद्धान्त है। श्रीमती राधिकाजी श्रीकृष्ण-की पूर्ण शक्ति हैं और ह्लादिनी शक्तिरूपा या श्रीकृष्णकी प्रणय-विकाररूपा हैं। ह्लादिनी-शक्तिके प्रभावसे राधा और कृष्ण अलग-अलग होते हुए भी एक रूपसे श्रीचैतन्य महाप्रभु हैं। श्रीमती राधिकाजी समस्त प्रकारके रसोंकी आकरस्वरूपा और स्वयं मूर्त्तिमती भक्तिदेवी हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी सम्यक् प्रकारसे आराधना करनेके कारण या उनके द्वारा आराधित होनेके कारण या उन्हें असीम आनन्द देनेके कारण 'राधा' हैं। वे देवी हैं, कृष्णमयी हैं, परदेवता हैं, सर्व लक्ष्मीमयी हैं, कृष्ण मनो-मोहिनी हैं और सर्वकान्तिमयी हैं। वे श्रीकृष्णकी सभी वांछाएँ पूर्ण करती हैं। 'रा' उच्चारण करने पर श्रीकृष्ण उच्चारणकारीको सब कुछ दे देते हैं और 'धा' उच्चारण करने पर उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ते हैं। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय, नवद्वीपमें आयोजित विशेष सभाओंमें विभिन्न वक्ताओंने श्रीराधा-तत्त्वका बड़े ही मार्मिकरूपसे शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया।

## श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर आविर्भाव-महोत्सव

गत ७ आश्विन, २४ सितम्बर, बुधवारके दिन जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव समितिके मूल-मठ तथा शाखा मठोंमें श्रीहरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े ही समारोहके साथ मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें श्रीश्रील ठाकुर महोदय द्वारा रचित कीर्त्तन और पदावलियोंका सबेरे तथा शामको विशेषरूपसे कीर्त्तन किया गया और उनकी अप्राकृत शिक्षाओं और अलौकिक जीवनी पर मार्मिक रूपसे प्रकाश डाला गया।

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर 'सप्तम गोस्वामी' कहे जाते हैं। उन्होंने मानव समाजको अमूल्य-निधि दान की थी और वर्त्तमान गौड़ीय जगत उनके निकट चिरऋणी है। श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने ही शास्त्रोंके सिद्धान्तोंको सहज, सरल भाषामें जनसाधारणके सामने प्रस्तुत किया था। इस प्रकार और किसी महाजन का देखा नहीं जाता। वैष्णवोंके लिए यह तिथि परमादरणीया और परम पालनीया है। भगवानकी अपेक्षा भक्तोंकी आराधना ही वैष्णवोंके लिए प्रथम कर्त्तव्य और परम प्रयोजन है।

## बिहारके संथाल-परगनामें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजने बिहारके संथाल परगनामें बड़े धूमधाम और दक्षताके साथ प्रचार किया है। वहाँ महेशपुरमें प्रचार करनेके बाद चंडालमारामें प्रचार किया। वहाँ ७ दिनोंतक श्रीमद्भागवत-पाठ, कीर्त्तन तथा छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्णलीला और राम-लीलाका आयोजन हुआ। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद धाधिका पहुँचकर वहाँ १ दिन रहकर बड़ी रणबहियाल पहुँचे। उनके साथ श्रीपाद मुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीपाद मुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीपाद सदाशिव ब्रह्मचारी, श्रीश्रीदाम ब्रह्मचारी, श्रीपाद कानाई ब्रह्मचारी, श्रीपाद भक्तपांद्रिरेणु व्रजवासी आदि थे। इस स्थान पर १० दिनों तक रहकर जन्माष्टमी-व्रत और उत्सवका पालन करते हुए बड़े जोरसे प्रचार किया गया। वहाँसे देवदाड़ गाँवमें पहुँचे। वहाँ जाकर पाठ-कीर्त्तन, छायाचित्र द्वारा श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण और श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंका प्रदर्शन तथा प्रवचन हुए। यहाँके बाल-बच्चे, वृद्ध तथा नर-नारियोंने बड़े उत्साहसे हरि-कीर्त्तनमें भाग लिया। वहाँ ७-८ दिन रहकर प्रचार-पार्टी राणी-बहाल, सारसाजोल, आसनवनि आदि होकर श्रीधाम नवद्वीप पहुँची।

—जनैक सम्वाददाता